।। श्रीराधासर्वेश्वरो जयति ।।



।। श्रीभगवन्निम्बार्काचार्याय नमः ।।

श्रीनिम्बार्काचार्य प्रभु द्वारा उपदिष्ट वैष्णवों के महाकौस्तुभ

व्रत पंचक

औदुम्बरवृक्ष तल में विराजित
श्रीनिम्बार्कप्रभु के चरणस्पर्शित
औदुम्बर (गूलर) फल से
श्रीऔदुम्बराचार्यऋषि का प्राकट्य

लेखन-संकलन-सम्पादन : जयकिशोरशरण

प्रकाशक : रंगदेवीसखी (रश्मिचन्द्रा)

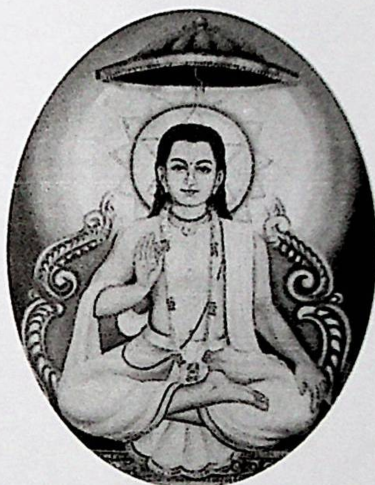
।। श्रीराधासर्वेश्वरो जयति ।।



।। श्रीभगवन्निम्बार्काचार्याय नमः ।।

श्रीनिम्बार्काचार्य प्रभु द्वारा उपदिष्ट वैष्णवों के [illegible]

व्रत-पञ्चक



लेखन-संकलन-सम्पादन

जयकिशोरशरण

प्रकाशक

रंगदेवीसखी (रश्मिचन्द्रा)

प्रेरकः

अनन्तश्री विभूषित जगद्‌गुरु निम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर
श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री 'श्रीजी' महाराज
अ.भा. श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ, निम्बार्कतीर्थ–सलेमाबाद (राज.)

प्रकाशन तिथिः

नवसम्वत्सर
चैत्र शु. प्रतिपदा, वि.सं. २०७२, दि. २१ मार्च २०१५

प्रथमावृत्तिः

१००० प्रतियाँ

न्योछावरः

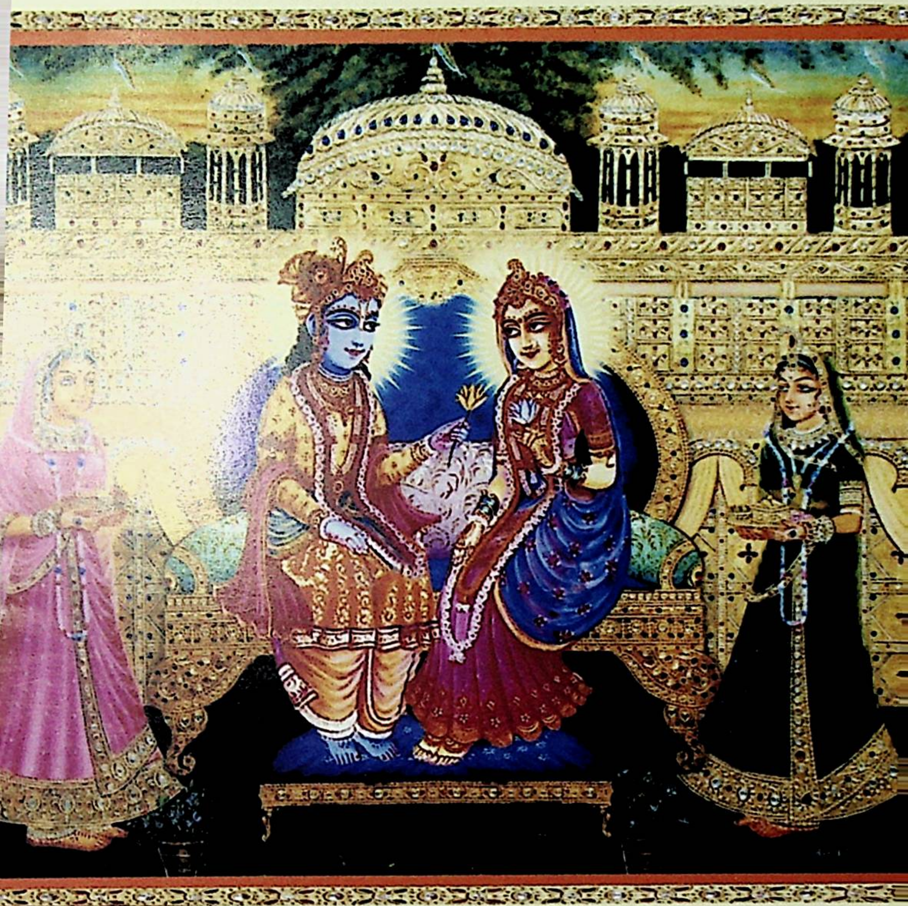
इक्यावन रुपये मात्र

पुस्तक प्राप्ति स्थानः

श्री 'श्रीजी' की बड़ी कुञ्ज
प्रताप बाजार, श्रीवृन्दावन

मुद्रण संयोजनः

श्रीहरिनाम प्रेस, हरिनाम पथ
लोई बाजार, वृन्दावन : दूरभाषः 0565–2442415



नित्य वृन्दावनस्थ मोहन मन्दिर में विराजित

श्रीश्रीश्यामाश्याम

दूरभाष : ०१४९७-२२७८२१
फैक्स : २२७१२१



मिति फाल्गुन शुक्ला ६ मंगलवार, वि० सं० २०७१

श्रीमन्निखिलमहीमण्डलाचार्य, चक्रचूडामणि, सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र, द्वैताद्वैतप्रवर्तक, यतिपतिदिनेश,
राजराजेन्द्रसमभ्यर्चितचरणकमल, भगवन्निम्बार्काचार्यपीठविराजित, अनन्तानन्त श्रीविभूषित

जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर

श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री "श्रीजी" महाराज

अ. भा. श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ, श्रीनिम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) पुष्कर क्षेत्र, किशनगढ़, जि.-अजमेर (राज.) - ३०५८१५

क्रमांक

दिनांक २४/२/२०१५

शुभाशीर्वादात्मक-मङ्गलकामना

व्रतादि नियमों का परिपालनीय स्वरूप

अनादि वैदिक सनातन वैष्णव संस्कृति में व्रतादि नियमों की पुरातन परम्परा रही है। जिसका परिपालन अद्यावधि अक्षुण्ण रूपेण संचालित है। उसमें वैष्णव पञ्च संस्कारों का परिवर्णन बड़ा महत्वपूर्ण है। यथा--

तापः पुण्ड्रं तथा नाम मन्त्रो याङ्गश्च पञ्चमः। अमी हि पञ्च संस्काराः परमैकान्त हेतवः।।

वैष्णव परम्परानुसार परिवर्णित पंच संस्कारान्तर्गत प्रथम संस्कार शीतल एवं तप्त मुद्रा बाहुमूल में दक्षिण चक्रराज एवं वाम में शंङ्ख धारण करना, ललाट प्रदेश में गोपीचन्दनादि द्वारा ऊर्ध्वपुण्ड्र (तिलक) धारण करना, भगवत्शरणागति परक नाम धारण करना, आचार्यश्री द्वारा मन्त्रोपदेश प्राप्त करना एवं प्राप्त मन्त्र द्वारा यागादिक पूर्ण करना ये पांचों संस्कार परम एकान्त में गुप्त विधि से वैष्णव जन द्वारा ग्रहण करना चाहिये।

धृतोर्ध्वपुण्ड्रः कृतचक्रधारी विष्णुं परं ध्यायति यो महात्मा।
स्वरेण मन्त्रेण सदा हृदि स्थितं परात्परं यन्महतो महान्तम्।।

वैष्णव पंच संस्कारों से संस्कारित जो महात्मा हैं, अपने उन्नत भाल प्रदेश में गोपीचन्दनादिक द्वारा ऊर्ध्वपुण्ड्र (तिलक) धारण करके अपने बाहुमूल में (गोपीचन्दनादि द्वारा शीतल विधि अथवा तप्त विधि से) शङ्ख चक्रांकित करके, आचार्योपदिष्ट मन्त्र द्वारा अपने हृत्प्रदेश में विराजमान महान् से महान् परात्पर परम विष्णु का सदा ध्यान करते हैं।

इन उपर्युक्त शास्त्रीय वचनों से प्रमाणित है कि हमारे वैष्णव संस्कार व्रतनियमादि का परिपालन अपेक्षित है। अत्यन्त प्रसन्नता है कि श्रीजयकिशोरशरणजी ने इन सभी व्रतादि नियमों का एक ही ग्रन्थ में संकलन किया है। जो सभी के लिए प्रेरणाप्रद रहेगा। हम उनके सर्वविध वर्चस्व के लिए सर्वेश्वर श्रीराधामाधव भगवान् से पुनः पुनः मङ्गलमयी कामना करते हैं।

श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य

अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु निम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर
श्री 'श्रीजी' महाराज विरचित

श्रीनिम्बार्कभगवान् की आरती

आरती निम्ब दिवाकर की। निम्बारक नित्य कृपाकर की।।
सुदर्शन हरि आयुध अवतार। प्रकट गोवर्धन तप विस्तार।।
सनक सर्वेश्वर शिर उर धार। सुशोभित व्रज-मण्डल सुखसार।।
परमाचार्य, प्रेमरसधार्य, प्रकट परकार्य,
अगनित गुन गन सुन्दर की।
निम्बारक नित्य कृपाकर की।।१।।

श्रीवपु नव नीरद सोहे। मुखाम्बुज मंजुल मन मोहे।।
नैंन छवि सरस मन भोंहे। भक्तजन दरशन नित जोहे।।
भक्तिरसवृष्टि, कृपारसवृष्टि, शास्त्रमतसृष्टि,
निरन्तर होय सुधाकर की।
निंबारक नित्य कृपाकर की।।२।।

वेदमत द्वैताद्वैत अधार। प्रिया-प्रिय प्रेमाभक्ति प्रचार।।
युगल श्रीराधा-माधव धार। रूप रंगदेवी नित्य-विहार।।
निम्बग्राम, श्रीव्रजधाम, सतत विश्राम,
मन्त्रगोपाल स्वान्त धर की।
निम्बारक नित्य कृपाकर की।।३।।

मन्त्र श्रीनारद मुनि पायो। निशामुख विधि रवि दरसायो।।
रसिकजन मृदु-रस सरसायो। धूर्त मत हतप्रभ करवायो।।
शरण हम आप, नशत सब पाप, भगत भवताप,
'शरण' नित श्रीकरुणाकर की।
निम्बारक नित्य कृपाकर की।।४।।

मंगलकामना

श्रीनिम्बार्काचार्य प्रभु द्वारा उपदिष्ट वैष्णवों के महाकौस्तुभ व्रत–पंचक का अवलोकन किया। इस ग्रन्थ का लेखन एवं संकलन श्रीजयकिशोरशरण जी ने बड़े ही गहन अध्ययन गवेषणात्मक रीति से किया है। इस में एकादशी व्रत, जन्माष्टमी, श्रीराधाष्टमी व्रत तथा भगवत्महोत्सवादि व्रतों का वर्णन एवं स्वरूप ग्राह्याग्राह्य, वेधावेध, शुद्धाशुद्ध तिथियों को दर्शाकर जनसाधारणजन का महान् उपकार किया है।

सर्वसाधारण वैष्णवजनों के बोधार्थ ऊर्ध्वपुण्ड्र स्वरूप, श्यामश्री धारण विधि एवं स्वरूप तथा ऊर्ध्वपुण्ड्र हेतु द्रव्य निर्णय विधि सप्रमाण पुस्तक में लिखा है। शंखचक्र–संस्कार, श्रीनिम्बार्क द्वारा द्वारकापुरी में सप्तमुद्रा संस्कार का पुनः शुभारम्भ विषय भी देखा, किन्तु रामानुज सम्प्रदायातिरिक्त किसी अन्य वैष्णव सम्प्रदायों में प्रायः इसका प्रचलन नहीं देखा जाता है। इस विषय में सभी वैष्णवाचार्य मौनप्राय प्रतीत दिखते हैं। सर्व वैष्णवाचार्यों एवं विद्वज्जनों से आग्रह है कि शास्त्रसम्मत दृष्टिकोण प्रस्तुत कर अज्ञ वैष्णव जनों का भ्रम निवारण करें।

तुलसी–कण्ठीधारण–संस्कार, मन्त्रोपदेश–संस्कार, नाम–संस्कार, याग–संस्कार, श्रीहरि–चरणोदक व्रत, भगवत्प्रसादी व्रत, युग्माराधन व्रत आदि बहुत उत्तम सुन्दर ढंग से सप्रमाण प्रस्तुत किया गया है। समस्त उत्सव मासोपवासादि व्रत एवं वर्जनीय वस्तु, दुर्व्यसन का त्याग इत्यादि बातें लिखकर जन साधारण का बड़ा ही उपकार किया है।

मैं प्रियाप्रीतम श्रीराधामाधव युगलवर से प्रार्थना करता हूँ वें श्रीजयकिशोरशरण जी को दीर्घायु प्रदान करें और प्रेरणा देते रहे कि इसी प्रकार सम्प्रदायिक एवं सामाजिक उत्थान के कार्यों में लगे रहें, जनप्रेरणा के स्रोत बने रहें। इन्हीं शब्दों के साथ श्रीराधासर्वेश्वर के चरणों में कोटि–कोटि प्रणाम।

पं. वैद्यनाथ झा

राष्ट्रपति पुरस्कृत

पूर्व प्राचार्य श्रीनिम्बार्क सं. महाविद्यालय

वृन्दावन

पूर्वोक्ति

शास्त्र द्वारा उपदिष्ट जप–तप, नियम–संयम, व्रत–उपवास, अर्चा–आराधना आदि सुकृत–कर्मों के अनुष्ठान से ही मानव का अन्तःकरण पवित्र होता है, दिव्य गुणों से अलंकृत होता है। दैन्यादि सद्‌गुणों से सम्पन्न सुहृदयी–भावुक जन पर ही श्रीसर्वेश्वर प्रभु निज कृपा का अभिवर्षण करते हैं। ऐसे कृपावन्त प्राणी ही परमपद अर्थात् श्रीभगवच्चरणारविंदों की अनन्त आनन्दमयी सेवा, अनन्त माधुर्यमयी नित्यलीला रस का पान करने के अधिकारी होते हैं। इसी परमपद प्राप्ति के उद्देश्य से भयावह भवटवी में भ्रमिण जीवों के हितार्थ श्रीनिम्बार्कभगवान् ने अनुसरणीय महाकौस्तुभ 'व्रत–पंचक' का महोपदेश अपने कृपा–पात्र शिष्य श्रीऔदुम्बरऋषि को किया, जिनका प्राकट्य श्रीनिम्बार्कप्रभु के चरणकमलों के स्पर्श से हुआ है। संक्षिप्त में आपका प्राकट्य–वृत्तांत इस प्रकार है–

कलि के आरम्भ में सर्वेश्वर श्रीकृष्णप्रभु की अनुज्ञा से सखी श्रीरंगदेवी एवं श्रीसुदर्शन–चक्रराज के स्वरूप आद्याचार्य जगद्‌गुरु श्रीनिम्बार्कभगवान् का अवतरण इस धराधाम पर दैत्यों का दमन कर वैदिक–वैष्णव धर्म संस्थापन एवं श्रीराधाकृष्ण–युगलोपासना–रसोपासना के प्रकाशन हेतु हुआ। प्राकट्य–स्थल मूँगी–पैठण से आ करके आपने श्रीगोवर्द्धन की तलहटी में अवस्थित निम्बग्राम में निवास किया। लक्ष्य पूर्ति हेतु श्रीब्रजधाम से जब आचार्यप्रभु भारत–भ्रमण करते हुए दक्षिणस्थ पद्‌मनाभ स्थल में पहुँचे। श्रीपद्‌मनाभ प्रभु के दर्शन कर आप वहीं तपोवन में अपने शिष्य–परिकर के साथ एक औदुम्बर (गूलर) वृक्ष के नीचे श्रीसर्वेश्वर प्रभु की सेवा करने लगे।

आचार्यश्री के शुभागमन से अत्यंत आनन्दित हुए क्षेत्रवासियों का आपके प्रति अति आदर-सत्कार एवं समर्पण भाव को देख वहाँ के विद्रोही विप्रजन आवेशित हो गये। जब आप श्रीसर्वेश्वर प्रभु की आराधना में रत थे, उसी समय द्वेषाग्नि से धधकती हुई विद्रोहियों की सेना आपके समक्ष आ पहुँची थी, ऐसी परिस्थिति में आपने जो विचित्र आश्चर्य प्रकट किया वह आपकी परिपूर्ण भगवत्ता का प्रतिपादन करने वाला था। आपके विस्मयावह प्रभाव को देख दुर्जन-सेना चकित हो गयी और उसी समय वहाँ से पलायन कर गयी।

वह आश्चर्य आप, स्वयं श्रीऔदुम्बरऋषि के श्रीमुख से श्रवण करें-

"पत्स्पृष्ट आत्मीय सखो बभूव औदुम्बरो जन्तुरिवात्मरूपः।
कृष्णस्य यद्वत्कृकलाससर्पो गन्धर्वमुख्यावतिचित्ररूपौ।।
श्रीधर्मसूनोरिव सर्पराजो रामस्य यद्वच्च शिला त्वहल्या।
देदीप्यमाना सुविमानविष्टा तस्मै नमस्ते समरूपदात्रे।।"

(श्रीनिम्बार्क विक्रांति ६०.६१)

"जैसे श्रीकृष्ण-चरणस्पर्श से गिरगिट और सर्प क्रमशः नृपति और गंधर्व रूप में प्रत्यक्ष होकर स्तुति करने लगे तथा श्रीयुधिष्ठिर के चरणस्पर्श से सर्प और श्रीराम-चरणस्पर्श मात्र से, ये दोनों दिव्याकृति मनुष्य और अहिल्या के रूप में प्रकट हो स्तुति कर विमानों पर सुशोभित हुए थे। ऐसे ही औदुम्बर (गूलर) वृक्ष से गिरा हुआ फल आपके (श्रीनिम्बार्क प्रभु) के श्रीचरणों से स्पर्श होते ही अपने रूप और आकृति के सदृश ही रूप और आकृतिवान् आपका परिचायक (मैं) औदुम्बर सहसा प्रकट हुआ। ऐसे तुच्छ जड़ पदार्थ को अपने समान रूपादि ऐश्वर्य प्रदान करने वाले आपके पाद-पद्मों को मैं प्रणाम करता हूँ।"

ऐसी महान् विभूति श्रीऔदुम्बरऋषि ने श्रीनिम्बार्कप्रभु का कोटिसूर्यसम- प्रभायुक्त दिव्य स्वरूप का दर्शन एवं आपश्री से जो

दिव्यानुभव प्राप्त किया है, उस निजानुभूति का अनुपम चित्रण आपने 'श्रीनिम्बार्कविक्रान्ति' ग्रंथ में किया है तथा 'औदुम्बर संहिता' में व्रत, उपवास, मासोपवास एवं वैष्णवों के महाकौस्तुभ 'व्रत पञ्चक' के अन्तर्गत प्रथम–एकादशी एवं भगवज्जयन्ती महोत्सव व्रत, द्वितीय श्रीहरिचरणोदक एवं भगवत्प्रसाद व्रत, तृतीय–स्वैतिह्य संस्कार विधि व्रत (वैष्णव पञ्चसंस्कार) चतुर्थ– श्रीयुग्म राधाकृष्ण–आराधन व्रत और पञ्चम–सत्यांग–हृद्–वाग–विहिंसन व्रत। इन सभी व्रतों के विधान का विवेचन पुराणों, महाभारत, पञ्चरात्र, तंत्र, स्मृति आदि आर्ष ग्रन्थों के दिव्य वचनों का संकलन करके किया है, जिसमें संदेह की समाई नहीं है।

शास्त्र प्रतिपादित कपालवेध–उदया–तिथि अर्थात् अर्द्धरात्र वेध ही श्रीनिम्बार्क–परम्परा में मान्य है। अर्द्धरात्र और अरुणोदय वेध के भेद से ही आगे–पीछे दो दिन एकादशी एवं भगवज्जयन्ती व्रतोत्सव होते हैं। इस विवाद–भेद का समाधान भी हमारे धर्मशास्त्र में ही हैं, देखिये प्रस्तुत ग्रन्थ के एकादशी एवं श्रीकृष्ण जन्माष्टमी व्रत प्रसंग में।

वैष्णव–पञ्चसंस्कारों में– "तापं, पुण्ड्र तथा नाम, मन्त्रो, यागश्च पञ्चमः।" का वर्णन है, किन्तु 'वैष्णवधर्म सुरद्रुम मंजरी' में वैष्णवों के वाह्यचिह्नों में तुलसी की कण्ठीमाला धारण करने का विधान है। 'औदुम्बर–संहिता में तुलसी आरोपण, सिंचन, दर्शन, स्पर्शन, ध्यान, कीर्तन, नमन, स्तवन तथा नित्य पूजन का शुभ विधान वर्णित है। कण्ठीधारण करने न करने का विशेष विवेचन नहीं है, कारण कि तुलसी काष्ठ की कण्ठीमाला का धारण करना कराना वैष्णवों में एक सर्वसाधारण नियम है। पुराणादि धर्मग्रन्थों में कण्ठीधारण करने का विधान, माहात्म्य तथा कण्ठी धारण न करने के परिणामों का विस्तृत वर्णन है। इसलिये कण्ठीमाला धारण कराने के पश्चात् ही हमारे वैष्णवाचार्य शरणागत जीव को मन्त्र–दीक्षा प्रदान करते हैं। पवित्र को पवित्रतम करने वाली ब्रह्मस्वरूपिणी तुलसी हैं। अतः प्रथम में प्रपन्न

प्राणी को परम पवित्र तुलसी कण्ठीमाला धारण कराकर परम्परागत परमदिव्य श्रीहरि–मन्त्र ग्रहण करने का अधिकारी बनाते हैं। इसी कारण प्रस्तुत ग्रन्थ में तुलसी कण्ठी धारण एवं उसकी महत्ता का शास्त्रोक्त वर्णन वैष्णवों का तृतीय "मन्त्रदीक्षा–संस्कार के अन्तर्गत ही प्रथम में किया है, पृथक् संस्कार के रूप में नहीं। वैष्णव मात्र को तुलसीजी इतनी प्रिय है कि वे कण्ठीमाला, जपमाला के अतिरिक्त तुलसी काष्ठ से निर्मित पत्राकृति पर श्रीराधा–कृष्ण–रामादि नामाङ्‌कित कर गले का आभूषण तथा कई वैष्णव कर्णभूषण रूप में धारण करते हैं। पलमात्र भी वैष्णव तुलसीजी से पृथक् नहीं होते हैं।"

'व्रत–पञ्चक' ग्रन्थ के अन्तर्गत वैष्णव पञ्च संस्कारों का संकलन वर्णन शास्त्र एवं परम्परागत प्रमाणित ग्रन्थों से किया गया है। प्रस्तुत ग्रन्थ–रत्न के प्रकाशन की महती सेवा भक्तिमती रश्मिचन्द्रा, भोपाल द्वारा की गयी है। यह ग्रन्थ निम्बार्कीय उपासकों के लिये ही नहीं अपितु वैष्णव–मात्र के लिये अत्यंत उपयोगी–हितकार सिद्ध होगा। इसी भावना के साथ यह वैष्णव महाकौस्तुभ 'व्रत–पञ्चक' ग्रन्थ भगवच्चरणानुरागी रसिक–भक्त महानुभावों की सेवा में सादर समर्पित है।

रसिकचरण रजाकांक्षी–

जयकिशोरशरण

सम्पादक 'श्रीसर्वेश्वर' मासिक पत्र

श्री 'श्रीजी' की बड़ी कुञ्ज

श्रीधामवृन्दावन

विषय सूची



आद्याचार्य जगद्‌गुरु

श्रीनिम्बार्क भगवान्

मङ्गलाचरण-पदावलि

मंगल मूरति नियमानन्द।
मंगल युगलकिशोर हंस वपु, श्रीसनकादिक आनन्दकंद।।
मंगल श्रीनारद मुनि मुनिवर, मंगल निम्ब दिवाकर चंद।
मंगल श्रीललितादि सखीगण, हंस-वंश संतन के वृंद।।
मंगल श्रीवृन्दावन जमुना, तट वंशीवट निकट आनंद।
मंगल नाम जपत जै 'श्रीभट', कटत अनेक जनम के फंद।।

नमो नमो नारद मुनिराज।
विषियन प्रेमभक्ति उपदेशी, छलबल किये सबन के काज।।
जिनसों चित दे हित किन्हों है, सो सब सुधरे साधु समाज।
व्यास कृष्णलीला रँग राँची, मिट गई लोक वेद की लाज।।

आज महा मंगल भयो माई।
प्रगटे श्रीनिम्बारक स्वामी, आनन्द कह्यौ न जाई।।
ज्ञान वैराग्य भक्ति सबहिन को, दियो कृपा कर आई।
प्रिया सखी जन भये मनचीते, अभय निसान बजाई।।

नमो नमो जै श्रीभट देव।
रसिक अनन्य जुगल पद सेवी, जानत श्रीवृन्दावन भेव।।
राधावर बिन आन न जानत, नाम रटत निशिदिन यह टेव।
प्रेम रंग नागर सुख-सागर, श्रीगुरु भक्ति शिरोमणि सेव।।

नमो नमो जै श्रीहरिव्यास।
नमो नमो श्रीराधा-माधव, राधा-सर्वेश्वर सुखरास।।
नमो नमो जै श्रीवृन्दावन, यमुना पुलिन निकुंज निवास।
रसिक गोविन्द अभिराम श्यामघन, नमो नमो रसरास विलास।।

मङ्गलाचरण श्लोक

१.

स्वभावतोऽपास्तसमस्तदोष, मशेषकल्याणगुणैकराशिम्।
व्यूहाङ्गिनं ब्रह्म परंवरेण्यं, ध्यायेम कृष्णं कमलेक्षणं हरिम्।।
अङ्गेतुवामे वृषभानुजां मुदा, विराजमानामनुरूपसौभगाम्।
सखीसहस्रैः परिसेवितां सदा, स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम्।।

(श्रीनिम्बार्काचार्य)

२.

राधाकृष्णावहं वन्दे रसरूपौ रसायनौ।
वृन्दावन–निकुञ्जेषु नित्यलीला–समाश्रितौ।।
गौरश्यामौ महारम्यौ कोटिकन्दर्प–मोहनौ।
रङ्गदेवी–सेव्यमानौ पराभक्ति प्रदायिनौ।।

(श्रीमहावाणी)

३.

श्रीहंसञ्च सनत्कुमारप्रभृतीन् वीणाधरं नारदं,
निम्बादित्यगुरूञ्च द्वादशगुरून् श्री श्रीनिवासादिकान्।
वन्दे सुन्दरभट्टदेशिकमुखान् वस्विंन्दुसंख्यायुतान्,
श्रीव्यासाद्धरिमध्यगाच्च परतः सर्वान्गुरून्सादरम्।।

४.

राधामुकुन्दाङ्घ्रिसरोजभृङ्गं भक्तेष्टवाञ्छातरुमाप्तसेव्यम्।
पयोधर श्याम बन्धुराङ्गं निम्बार्कमाचार्य मनुस्मरामि।।

(जगद्गुरु श्री 'श्रीजी' महाराज)

५.

विलोहित प्रान्त–विशाललोचनां मुखप्रभापूर्णनिशाकरोपमाम्।
सच्चामरालङ्कृतहस्तपङ्कजां श्रीरङ्गदेवीं मनसा स्मरामि ताम्।।

(सखीरूपाचार्यरत्नावलिस्तोत्र)

१. जो समस्त सद्गुणों के समुद्र हैं, किन्तु किसी भी प्राकृतिक दोष से लिप्त नहीं है। वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरूद्ध इन चारों व्यहों के अंगी हैं। कमल के समान नयन वाले, भक्तों के पाप दोषों एवं चित्त को एवं चित्त को चुराने वाले, अतएव सेवा करने योग्य परब्रह्म श्रीकृष्ण का हम चिन्तन करते हैं। उन (प्रभु) के सदृश ही सौंदर्ययुक्त उनके बायें अंग मे विराजमान, अनन्त सखियों से परिसेवित, समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली उन श्रीकिशोरी राधाजी का हम सदा स्मरण करते हैं।

२. हम उन श्रीराधाकृष्ण की वन्दना करते हैं, जो रसरूप तथा रसायन अर्थात् रस के आलम्बन–स्वरूप हैं। जो श्रीवृन्दावन की निकुञ्जों में नित्य लीला–विहार करते रहते हैं। जिनकी गौर–श्याम कान्ति है। जो अपनी अतिशय सुन्दरता से करोड़ों कामदेवों को मोहन करने वाले हैं। जो पराभक्ति प्रदान करने वाले हैं और जिनकी सेवा में श्रीरंगदेवी आदि सखियाँ समुपस्थित रहती हैं।

३. श्रीहंसभगवान्, श्रीसनकादिकभगवान्, वीणाभूषित श्रीनारद भगवान, गुरुदेव श्रीनिम्बार्कभगवान्, श्री श्रीनिवासाचार्य आदि द्वादश गुरुदेव श्रीसुन्दरभट्ट प्रमुख १८ संख्याक आचार्यगण तथा श्रीहरिव्यासदेवाचार्य के परवर्ती समस्त गुरुदेवों की मैं वन्दना करता हूँ।

४. श्रीराधामुकुन्द के चरणारविन्दों का भक्ति–सुधारस पान करने में भ्रमर तुल्य, भक्तजनों की इच्छापूर्ण करने में कल्पवृक्ष के समान, श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा संसेवित, जलधर (मेघ) के सदृश श्यामवर्ण सुन्दर श्रीविग्रहस्वरूप, ऐसे आचार्यप्रवर श्रीनिम्बार्क भगवान् का मैं स्मरण करता हूँ।

५. मैं उन श्रीरंगदेवीजू का मन से स्मरण करता हूँ, जिनके विशाल नेत्रों का प्रान्तभाग कुछ अरुणवर्ण का है, जिनकी मुखप्रभा पूर्ण चन्द्रमा सरीखी है और जिनके हस्तकमल में सुन्दर चँवर सुशोभित है।

श्रीनिम्बार्कप्रभु द्वारा उपदिष्ट वैष्णवों के महाकौस्तुभ

व्रत–पंचक

श्रीनिवासजी– हे प्रभो ! आपश्री के अनुगत हम सभी शिष्यों की जिज्ञासा है कि आपके श्रीमुख से पक्ष, मास, वर्ष आदि में करने योग्य नैमित्तिक कर्मों (किसी विशेष लक्ष्य–प्रयोजनार्थ किये जाने वाले कृत्य) का वर्णन श्रवण करें।

एवमामन्त्रितो हार्द्दं निम्बादित्य उवाच तम्।
श्रीनिवासानुग सम्यक् पृष्टं ते सकलोचितम्।।

(श्रीऔदुम्बरसंहिता ५)

श्रीनिवासजी द्वारा प्रार्थना करने पर श्रीआचार्यपाद ने कहा–

श्रीनिम्बार्काचार्यप्रभु– हे अनुग ! तुमने सभी भक्तों के लिये परम हितकारी प्रश्न किया है। तुम्हारे अभीष्टरूप व्रतपञ्चक को मैं बतलाऊँगा, जिससे कि पक्ष से लेकर वर्ष पर्यन्त कृत्यों का निर्णय हो सकेगा। पंचव्रत–परायण को नैमित्तिक कृत्य अवश्य करने ही चाहिये। मैं अपने इष्ट श्रीराधाकृष्ण को प्रणाम करता हूँ। उन्हीं के श्रीचरणों का आश्रय लेकर 'व्रतपञ्चक निर्णय' का शास्त्रानुकूल वर्णन कर रहा हूँ, आप सभी वैष्णव–भक्त श्रवण करें–

एकादशी कृष्णमहोत्सवव्रतं, स्वैतिह्यसंस्कारविधिव्रतं तथा।
अङ्घ्रिप्रसादव्रतमेकभावतः, श्रीराधिकाकृष्णयुगार्च्चनव्रतम्।।
सत्याङ्गहृद्वागविहिंसनव्रतं सन्तो वदन्ति व्रतपञ्चकं त्विदम्।
एकादशी कृष्णमहोत्सवव्रतं तत्रैकमाहुश्च समन्वयव्रतम्।।

(श्रीऔदुम्बरसंहिता ७.८.)

प्रथम– एकादशी एवं भगवत् जयंती महोत्सवादि व्रत।

द्वितीय– स्वैतिह्य–संस्कारविधिव्रत अर्थात् ऊर्ध्वपुण्ड्र (तिलक),

शंखचक्र धारण, मन्त्रोपदेश–तुलसीकण्ठीधारण, नामसंस्कार और यागसंस्कार अर्थात् भगवत्सेवार्चन–नामयज्ञ। वैष्णव के ये पञ्च संस्कार हैं।

तृतीय– अंघ्रि–प्रसादव्रत, 'अंघ्रि' अर्थात् चरणोदक। भगवच्चरणोदक पान करने के पश्चात् ही जलादि ग्रहण करने का व्रत। 'प्रसाद' भगवत्प्रसाद–नैवेद्यव्रत–अर्थात् भगवत्प्रसादी के अतिरिक्त अन्नादि पदार्थों का भक्षण न करना।

चतुर्थ– युग्माराधन व्रत – एकात्मभाव से श्रीराधाकृष्ण प्रभु की आराधना करना।

पञ्चम – सत्याङ्ग – हृद्वाक् – अविहिंसन व्रत – अर्थात् मन–वचन–तन से किसी को भी क्षति–हानि न पहुँचाने वाला अहिंसात्मक सत्यव्रत। इन सबको सज्जन–जन 'व्रतपञ्चक' कहते हैं। इनमें एकादशी और भगवत्महोत्सव ये दोनों संयुक्त एक व्रत में माने जाते हैं। अब आप सभी वैष्णववृन्द 'एकादशी–भगवत्महोत्सव आदि व्रतपञ्चक का क्रमशः परिवर्णन श्रवण करेंगे।'

व्रतपंचक का प्रथम व्रत–

एकादशी एवं भगवत्महोत्सव व्रत

श्रीऔदुम्बरऋषि– हे आचार्य प्रभु ! आपके श्रीचरणों में हम सभी शिष्यों की ओर से विनम्र प्रार्थना है कि आप हमें व्रत, उपवास एवं एकादशी के स्वरूप का परिबोध करायें। आपकी महती कृपा होगी।

श्रीनिम्बार्काचार्य– हे प्रिय शिष्यवृन्द ! हमारे धर्मग्रन्थों में व्रत, उपवास एवं एकादशीव्रत महिमा का सविस्तार वर्णन किया गया है। संक्षिप्त में आप सभी इनके स्वरूप को ध्यानपूर्वक श्रवण करें–

व्रत– किसी दिन किन्हीं विशेष नियमों के पालन करना, जैसे– एक समय भोजन–प्रसाद, फलाहार अथवा निराहार रहना– इस संकल्प अथवा प्रतिज्ञा को ही 'व्रत' कहा गया है। इसमें विशेषता यह

है कि– अग्नि केवल आहार को ही पचाता है, किन्तु व्रतोपवास शरीर के समस्त दोषों को पचाकर शरीर को निरोग बनाता है।

उपवास– मन, बुद्धि एवं इन्द्रियों की वृत्तियों को संयम द्वारा श्रीहरि के उप (समीप) वास (स्थिति) रखने का नाम ही उपवास है। जैसे–

उपावृतस्तु पापेभ्यो यस्तु वासो गुणैः सह।
उपवासः स विज्ञेयः सर्वभोगविवर्जितः।।

(स्कन्दपुराण)

पापों से उपावृत्त (पृथक) होकर अर्थात् समस्त विषय–भोगों से रहित होकर गुणों के साथ वास करने का नाम ही 'उपवास' है। अतः व्रतोपवास के दिन भगवद्भजन, पाठ, पूजन और कीर्तनादि द्वारा मन को भगवच्चरणारविन्दों में लगाये रखना, यही व्रतोपवास का प्रमुख उद्देश्य है। अब आप 'व्रतपंचक' के अन्तर्गत सर्वप्रथम एकादशीव्रत का स्वरूप दर्शन करें–

एकादशी व्रत

भगवद्भजन की पवित्र भावना को लेकर हमारे सत्‌गुरुओं, ऋषि–महर्षियों ने प्रतिमास में दोनों एकादशियों के व्रतोपवास शास्त्रविधानानुसार करने का उपदेश किया है, जो इहलोक एवं परलोक दोनों में ही मंगलप्रद हैं।

एकादशी अर्थात् दशों दन्द्रियों और मन को एकाग्र कर निराहार अथवा एक समय फलाहार करके भगवच्चिन्तन करना ही एकादशी व्रत का विधान है। एकादशी भगवान् विष्णु के विग्रह से प्रकटित एक वैष्णवी शक्ति है। एकादशी तिथि को उत्पन्न होने के कारण यह एकादशी तिथि की अधिष्ठात्री देवी है। जैसे देवताओं में सर्वेश्वर श्रीकृष्ण प्रधान हैं, वैसे ही व्रतों में एकादशी व्रत प्रमुख हैं।

श्रीऔदुम्बरऋषि– हे कारुण्यमूर्ते ! एकादशी आदि व्रतों में तथा भगवद्–भागवत जयन्तियों में 'कपालवेध' क्या है?

उदयव्यापिनी ग्राह्या कुले तिथिरुपोषणे।
निम्बार्को भगवान् येषां वाञ्छितार्थप्रदायकः।।

(भविष्यपुराण)

हे श्रीगुरुदेव ! ये वचन श्रीवेदव्यासजी ने भविष्यपुराण में आपश्री के प्रति कहे हैं कि – "सर्व सिद्धियों के प्रदान करने वाले श्रीनिम्बार्कभगवान् ने परम्परागत उदयव्यापिनी तिथि को ही स्वीकार किया है।" अतः हमें भी कृपापूर्वक 'कपालवेध' के भेद का परिबोध करायें।

श्रीनिम्बार्काचार्यप्रभु–

अर्द्धरात्रे तु केषांचिद्दशम्यां वेध इष्यते।
कपालवेध इत्याहु आचार्या ये हरिप्रियाः।।

(ब्रह्मवैवर्तपुराण)

हे शिष्यगण! ब्रह्मवैवर्तपुराण में श्रीशौनकजी का कथन है कि जो भगवत्प्रिय आचार्य हैं वे 'कपालवेध' अर्थात् अर्द्धरात्रि वेध को मानते हैं और हमारा भी यही मत है। अतः श्रीहरिप्रियाचार्यों के अभिमत में अर्द्धरात्रि पर ही दशमीवेध प्रिय है।

अर्द्धरात्रमतिक्रम्य दशमी दृश्यते यदि।
तदा ह्येकादशीं त्यक्त्वा द्वादशीं समुपोषयेत्।।

(कूर्मपुराण)

"जो अर्द्धरात्र का अतिक्रमण (उल्लघन) कर अर्थात् ४५ घटी के उपरान्त दशमी दृष्टिगोचर हो तो निश्चय एकादशी को छोड़कर द्वादशी में ही व्रत करें।" ४५ घटी से उपरान्त दशमी हो तो वह आगामी एकादशी तिथि का स्पर्श कर लेती है। इसीलिये इस वेध का नाम 'स्पर्शवेध' है।

अर्द्धभाग का नाम 'कपाल' है अर्थात् रात्रि के अर्द्धभाग के वेध को मानने से इसका नाम 'कपालवेध' है।

विद्धा और शुद्धा इस प्रकार एकादशी के दो भेद हैं। प्रत्येक तिथि का संबंध पूर्व या पर इन दोनों तिथियों में से किसी एक के साथ तो सामान्यतः होता ही है। अतएव पूर्वा तिथि (दशमी) से संबंधित एकादशी को 'विद्धा' और पर तिथि (द्वादशी) से संबंधित एकादशी को 'शुद्धा' का रूप दिया गया है। हमारे श्रीगुरुदेव (श्रीनारदजी) ने पंचरात्र ग्रंथ में बतलाया है कि– "पूर्व विद्धातिथिस्त्यागो वैष्णवस्य हि लक्षणम्।" इस प्रकार पूर्वाचार्यों के अभिमत से विद्धा एकादशी त्याज्य और शुद्धा एकादशी ग्राह्य है, भले ही एकादशी में द्वादशी आ जाय, इस बात का दोष नहीं।

इसी प्रकार श्रीराधाकृष्ण आदि भगवज्जयन्तियाँ तथा श्रीआचार्य–पाटोत्सवादि में भी इस क्रम से पूर्व विद्धा तिथि त्याज्य और पर विद्धा (शुद्धा) तिथि ही ग्रहण करना चाहिये। हमारे परमगुरु श्रीसनत्कुमारों ने भी यही आदेश किया है–

महानिशमतिहाय दशमी परगामिनी।
तत्र व्रतं तु वैष्णवा न कुर्वन्त्यस्मदाश्रयाः।।

(श्रीसनत्कुमारागम)

अर्थात् जो अर्द्धरात्र को उलंघन कर दशमी परभाग (एकादशी) में हो तो उस दिन हमारे अनुगामी वैष्णव एकादशी व्रत को न करें।

श्रीश्रीनिवास– हे श्रीआचार्यदेव ! स्पर्श आदि चारों वेधों से युक्त एकादशी सर्वथा त्याज्य है, यह बात तो अच्छी तरह समझ में आ गयी। परन्तु विद्धा एकादशी में ऐसे क्या दोष–हानि हैं, जिनके कारण इसका निषेध किया गया है, इस तथ्य को भी स्पष्टरूप से समझाने की कृपा करें।

श्रीनिम्बार्काचार्य– हे अनुग निवास ! शास्त्र प्रमाणों के अतिरिक्त कपालवेध स्वीकार करने के प्रधान कारणों में यह भी है कि अर्द्धरात्री

में दशमी से स्पर्श की गई एकादशी में बीस प्रकार के दोष प्राप्त होते है। 'श्रीनारदपंचरात्र' में उन दोषों का नामोल्लेख किया है। यथा– व्यालामुखी, महाव्याला, भया, महाभया, वज्रा, अतिवज्रा, रौद्रा, महारौद्रा, आसुरी, वन्ध्या, महावन्ध्या, छायाग्रस्ता, वेधा, अतिवेधा, महावेधा, षडाधिका, प्रलया, महाप्रलया, महाघोरा और सम्पूर्णा राक्षसी।

'विष्णुधर्मोत्तर' में भगवान् की ऐसी उक्ति मिलती हैं–

दशम्यामर्द्धरात्रं स्यादसुरोत्पत्तिकारणम्।
अतो जन्मदिनं येषां विख्यातास्ते निशाचराः।।
दिवोद्भुताः सुराः सर्वे सौम्याः सत्त्वगुणान्विताः।
अतस्तु दशमीवेध एकादश्यां निषिध्यते।।

अर्थात् "दशमी में असुरों की और एकादशी में देवों की उत्पत्ति हुई है, जिसका जो जन्मदिन होता है उसकी उसी दिन अनुवृद्धि होती है।" "दशमी में भी अर्द्धरात्र का समय असुरों की उत्पत्ति का कारण है। अतः उस समय जिनकी अभिव्यक्ति हुई वे निशाचर नाम से विख्यात हुए।" सौम्य सत्वगुण युक्त देवता एकादशी के दिन में हुए, इसीलिये एकादशी में दशमी का वेध निषिद्ध माना जाता है।

वेधों के चार प्रकार– गंध, संग, शल्य और वेध। दशमी यदि ४५ घटी से अधिक हो तो वह गंध–स्पर्श, ५० घटी से अधिक हो वह संग, ५५ घटी से अधिक हो तो शल्य और ६० घटी या उससे कुछ अधिक हो तो वह वेध कहलाता है। इन वेधों के कारण ही एकादशी की गंधिनी, संगिनी, शल्या एवं विद्धा ये चार दूषित संज्ञायें हैं।

चतुवर्गा सुरदात्री चतुर्था वेधहेतुतः।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं न कर्त्तव्या कदाचन।।

(विष्णुधर्मोत्तर)

'श्रीविष्णुधर्मोत्तर' में भगवद्वचन है– "चारों वेधों से युक्त एकादशी धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों वर्गों को विनष्ट कर देती है, यह ध्रूव सत्य है। अतः विद्धा एकादशी को व्रत कभी भी नहीं करना चाहिये।"

एवं ज्ञात्वा चतुर्दोषा वर्जिता मत्परायणैः।
मद्व्रतं वेधरहितं कृतं च कारितं मुने।।
कलौ प्राप्ते मुनिषेष्ठ महावेधं चतुर्विधम्।
साहंकारा न पश्यन्ति आसुरं भावमाश्रिताः।।

(विष्णुधर्मोत्तर)

हे मुने ! मेरे आश्रित भक्तों ने इस प्रकार जान करके चारों दोषों से वर्जित वेध रहित एकादशी का ही व्रत किया है और करवाया है। परन्तु "कलियुग में आसुर भाव वाले अहंकारी जन महावेध का विचार नहीं करेंगे।"

'पद्मपुराण' में भीष्मपितामह ने प्रभु श्रीकृष्ण से हिरण्याक्ष दैत्य के पराजित न होने पर कारण पूछा– श्रीहरि ने कहा– "शुक्राचार्य की माया से मोहित बहुत से ब्राह्मण दैत्यों की पुष्टि के लिये आजकल दशमी–विद्धा एकादशी का व्रत कर रहे हैं।" "हे पितामह ! दशमीविद्धा एकादशी का व्रत ये निस्संदेह दैत्यों की पुष्टि करता है, यह पूर्ण सत्य है।" "जब तक दशमीविद्धा एकादशी का व्रत करते रहेंगे, तब तक राक्षसों का बल बढ़ता ही जायगा।" "क्योंकि दशमीविद्धा एकादशी व्रत का फल देवताओं द्वारा दैत्यों को दिया जा चुका है।" हे पितामह ! इसी कारण से महाअसुर हिरण्याक्ष दुर्बाध्य हो गया है। युद्ध में इन्द्र को जीतकर उसने देवताओं के राज्य को हड़प लिया है।" श्रीकृष्ण प्रभु ने कहा– "हे मार्कण्डमुनि ! मेरी आज्ञा से तुम भूलोक में जाओ, वहाँ दशमी–वेध के विषय में शुक्र की माया को निवारण करो।" "पहले प्रलय में उदर को स्पर्श करके द्वादशी मिश्रित एकादशी व्रत करने का निश्चित विधान मैंने बतलाया था। यही बात तुम सब मनुष्यों से कहना।" "प्रभु के वचनों को श्रवण कर मुनिश्रेष्ठ मार्कण्डेय नैमिषारण्य में पहुँचे, जहाँ पर भगवान् यज्ञपुरुष–रूप में विराजमान थे।" "नैमिषारण्य के मुनियों ने मार्कण्डेय के वचनों को सुनकर बड़ा आश्चर्य माना, वे शुक की माया से मुक्त हो गये।"

(उक्त प्रसंग 'औदुम्बरसंहिता में श्लोक ३८ से ५४ तक वर्णित हैं)

श्रीनिम्बार्काचार्य– हे प्रिय शिष्यों ! विद्धा एकादशी व्रत के दुस्प्रभाव से जन साधारण ही नहीं अपितु पापरहित महान् प्रतिव्रतायें तथा धर्मनिष्ठ जन भी नहीं बच सके। यथा–सीताजी के पूछने पर श्रीवाल्मीकि जी ने सीताजी के कष्ट का कारण, श्रीवशिष्टजी ने मान्धाता की रानी को पति–पुत्र, बंधु–बांधवों से वियुक्ति का कारण, 'विष्णुरहस्य' में गान्धारीजी के सौ पुत्र नष्ट होने का कारण तथा श्रीमैत्रेयजी ने राजा धृतराष्ट्र को स्त्री और पुत्रों से पृथक् होने का हेतु विद्धा–एकादशीव्रत को ही बतलाया है।

'ब्रह्मवैवर्तपुराण' में कहा गया है– "ऐसा कौन मूर्ख है जो हलाहल विष से संमिलित जल को भी पीयेगा। इसी प्रकार दशमीयुक्त एकादशी का व्रत कौन करेगा। भगवत्प्राप्ति की इच्छावाले ऋषि–मुनियों ने इन सब बातों पर विचार करके ही दशमीविद्धा एकादशी का त्याग किया है।"

(औदुम्बर संहिता ७६.८०)

श्रीवेदव्यासजी ने तो यह घोषणा कर दी है–

द्वादशी दशमीयुक्ता यत्र शास्त्रे प्रतिष्ठिता।
नैतच्छास्त्रमहं मन्ये यदि ब्रह्मा स्वयं वदेत्।।

(औदुम्बरसंहिता, ८६)

अर्थात् "जिस शास्त्र या ग्रंथ में दशमीयुक्त एकादशी को व्रत रखने का विधान हो उसको सत्–शास्त्र नहीं मानना चाहिये। चाहे वह ब्रह्माजी का ही वाक्य क्यों न हो।" 'पद्मपुराण' में श्री गौतमऋषिजी के वचन है– "हे भूपाल ! दशमीविद्धा एकादशी को व्रत करने वालों को प्रयत्नपूर्वक शास्त्रीय प्रमाणों द्वारा रोक देना चाहिये।" क्योंकि "जिस राजा के राज्य में विद्धा विष्णुवासर का व्रत होता हो उसका पाप राजा को लगता है। उस पाप से राजा नरकगामी हो जाता है।" "फिर जब चारों प्रकार के वेधों से रहित शुद्धा एकादशी को व्रत करे, तब उसका और उसके कुल वाले करोड़ों व्यक्तियों का नरक से उद्धार हो सकता है।"

(औदुम्बर संहिता ८७.८८.८६.)

"अरुणोदय और अर्द्धरात्र इन दोनों वेध के भेद से ही आगे पीछे दो दिन एकादशी का व्रत होता है। इससे उपवास करने वाले सज्जनों के चित्त में संदेह हो जाता है।" "उन दोनों वैष्णव–मतों में पक्षपात छोड़कर उस साक्ष्य का निरूपण करना चाहिये जिसकी आप्तपुरुषों ने संस्थापना की है, उसी के अनुसार दोनों वैष्णवमतों में व्रत करना चाहिये।"

(ब्रह्मवैवर्त, औदु. सं. १०८.१०६)

'स्कन्दपुराण' में भगवान् का वचन है– "दो व्यक्ति विवाद करें तो द्वादशी को एकादशी का व्रत करके त्रयोदशी को पारण करना चाहिये। ऐसा शास्त्र का निर्णय है।"

ऐसे ही वाक्य हमारे परमगुरु श्रीसनकादिकों के हैं–

आज्ञेयमैश्वरी विप्रा यामृते न शिवं भवेत्।।
विवादेषु च सर्वेषु विहायैकादशीन्तदा।
उपोष्या द्वादशी शुद्धा त्रयोदश्यां तु पारणम्।।

(औदुम्बर संहिता ११५)

"किसी प्रकार का विवाद (शास्त्रीय वाक्य, ब्राह्मणों आदि में) हो तो द्वादशी को व्रतोपवास करके त्रयोदशी में पारणा करे, ऐसी भगवान् की आज्ञा है। इसके विपरीत करने में कल्याण नहीं है।"

आठ महाद्वादशी

जया, विजया, जयन्ती, पापनाशिनी, उन्मीलिनी, वंजुलिनी, त्रिस्पृशा, और पक्षवर्धिनी ये आठ महाद्वादशी हैं। इनका योग इस प्रकार बनता है, जैसे किसी भी मास के शुक्ल पक्ष की द्वादशी पुनर्वसु नक्षत्र से युक्त हो तो जया, रोहिणी ये युक्त हो तो जयन्ती, पुष्य से युक्त हो तो पापनाशिनी तथा श्रवण नक्षत्र से युक्त हो तो चाहे शुक्ल पक्ष हो अथवा कृष्ण पक्ष वह विजया नामक महाद्वादशी कहलाती है। इसी प्रकार एकादशी पूर्ण हो और दूसरे दिन भी कुछ एकादशी हो तो वह द्वादशी उन्मीलिनी कहलाती है और यदि एकादशी और द्वादशी

सम्पूर्ण हो और फिर त्रयोदशी को भी कुछ अवशिष्ट हो तो वह द्वादशी वंजुलिनी महाद्वादशी कहलाती है। द्वादशी का क्षय होकर रात्रि शेष में त्रयोदशी हो तो वह त्रिस्पृशा तथा अमावस्या व पूर्णिमा दो हो जाय तो वह पक्षवर्धिनी कहलाती है। इनका योग आ जाने पर दोनों सम्भव न हो तो शुद्धा एकादशी को छोड़कर महाद्वादशी में ही व्रत करना चाहिये, ऐसी शास्त्रों की आज्ञा है।

एकादशी भवेत्पूर्णा परतो द्वादशी भवेत्।
तदा ह्येकादशीं त्यक्त्वा द्वादशीं समुपोषयेत्।।

(स्कन्दपुराण)

भावार्थ–एकादशी पूर्ण हो अर्थात् पूर्व तिथि दशमी विद्धा न हो और अग्रिम तिथि द्वादशी महाद्वादशी के रूप में हो, तब ऐसी अवस्था में एकादशी तिथि में एकादशी व्रत को त्याग कर महाद्वादशी के दिन ही व्रत करना चाहिये। यह शास्त्रीय विधान है।

'वैष्णव धर्म सुरद्रुम' मञ्जरी के आचार तिलक के पृष्ठ १३६ पर अंकित श्लोक के अनुसार।

पर्वाच्युतजयावृद्धौ, ईशदुर्गान्तकक्षये।
शुद्धाप्येकादशी त्याज्या द्वादश्यां समुपोषणम्।।

(ब्रह्मवैवर्त पुराण)

भावार्थ–पर्व (पूर्णिमा, अमावस्या) अच्युत (द्वादशी) जया (त्रयोदशी) की वृद्धि हो और ईश (अष्टमी) दुर्गा (नवमी) अन्तक (दशमी) इनमें से किसी एक का क्षय हो तो शुद्धा एकादशी छोड़कर भी द्वादशी में व्रत करें।

श्रीभगवन्निम्बार्काचार्य द्वारा अनुमोदित–स्वीकृत 'कपालवेध' अत्यन्त प्राचीन है। समस्त शास्त्र, पुराण, स्मृति, संहिता एवं ऋषि–महर्षियों द्वारा प्रतिपाद्य यह वेध बहुजन प्रिय भी है। जैसे–

१. महर्षि पाणिनिमुनि ने स्वरचित 'अष्टाध्यायी' के एकसूत्र 'अनद्यतनेलुट्' में गत रात्रि के १२ बजे से लेकर आगामी रात्रि १२ बजे पर्यन्त के काल को अद्यतन काल (वर्तमानकाल) अर्थात् आज का

दिन बतलाया है और इससे पूर्व तथा पर काल को अनद्यतन (आज से पहले या पीछे का) काल माना है।

२. वीर विक्रमादित्य का नव संवत् भी चैत्रमास के अर्द्धभाग कपाल अर्थात् अमावस्या के पश्चात् शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से ही आरम्भ होता है।

३. ईस्वी सन् (अंग्रेजी संवत् के महिनों) की दिनाँक भी रात्रि के अर्द्धभाग १२ बजे बाद बदल जाता है।

४. रात्रि के अर्द्धभाग अर्थात् १२ बजे पश्चात् मनुष्य के जन्म अथवा मृत्यु हो जाने पर भी दूसरा दिन मान लिया जाता है। इत्यादि।

श्रीभगवत्महोत्सव

व्रतपञ्चक में प्रथम व्रत–एकादशी एवं भगवत्महोत्सव हैं, जिसमें एकादशी–महाद्वादशी व्रत–महिमा व कर्तव्य का वर्णन श्रवण कर चुके हैं। अब आपको भाद्रपद मास के भगवतोत्सव – श्रीकृष्णजयन्ती एवं श्रीराधाष्टमी का माहात्म्य व कर्तव्य बतलाते हैं।

निज सामर्थ्य के अनुसार वैष्णव–मात्र को सभी भगवतोत्सव–व्रत पूर्ण श्रद्धा–भाव से शास्त्र–विधानानुसार मनाने चाहिये।

श्रीकृष्णाष्टमी व्रत –

कृष्णपक्षे तु भाद्रके चाष्टमी कृष्णवल्लभा।
उपोष्या सर्वपुरुषैर्वैष्णवैस्तु विशेषतः
प्रत्यवाय–श्रवणत्वात् करणे नित्यता तथा।।

(औदुम्बरसंहिता)

भाद्रपद कृष्णपक्ष की अष्टमी श्रीकृष्णप्रभु को अतिशय प्रिय लगती है। उस दिन सभी को उपवास करना चाहिये, विशेष करके वैष्णवों को तो करना ही चाहिये। क्योंकि इसका नित्य विधान है, उस दिन व्रत न करने से दोष लगता है।

ये न कुर्वन्ति जानन्तः कृष्णजन्माष्टमीव्रतम्।
धर्मबाह्यास्तु ते ज्ञेया दैत्येया दानवा हि ते।।

(स्कन्दपुराण)

जो जानते हुए भी श्रीकृष्ण जन्माष्टमी व्रत नहीं करते हैं, उन्हें धर्म से वहिर्मुख दैत्य–दानव समझना चाहिये।

कृष्णाष्टमीदिने प्राप्ते येन भुक्तं द्विजोत्तम।
त्रैलोक्यसम्भवं पापं भुक्तं तेन न संशयः।।
अतीतानागतं तेन कुलमेकोत्तरं शतम्।
पातितं नरके घोरे भुंजतां कृष्णवासरे।।

(स्कन्दपुराण)

हे द्विजोत्तम ! श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के दिन जो अन्न–भक्षण करता है, उसने त्रिलोकी का पाप आत्मसात् कर लिया। वह भूत भविष्यत् एक सौ एक कुल वालों को नरक में डालता है।

जन्माष्टमीदीने प्राप्ते येन भुक्तं द्विजोत्तम।
त्रैलोक्यसम्भवं पापं भुक्तं तेन न संशयः।।

(विष्णुरहस्य)

अधिक क्या कहा जाय, जिसने जन्माष्टमी के दिन अन्न–भक्षण किया, उसने त्रिलोकी का समस्त पाप ही खा लिया।

अब आप जन्माष्टमी व्रत का पुण्य–फल देखिये–

कापिलं गोसहस्रं तु यो ददाति दिने दिने।
तत्फलं समवाप्नोति जयन्त्यां समुपोषते।।

(स्कन्दपुराण)

"जो प्रतिदिन हजारों गायों का दान करे, उसके समान ही एक बार श्रीकृष्ण जयन्ती के व्रत करने से फल प्राप्त होता है।" स्कन्दपुराण के वचन है – "हजारों कूप–बावड़ी, देव मन्दिरों का निर्माण, करोड़ों कन्यादान, माता–पिता, गुरुदेव की सेवा, कुरुक्षेत्र में हजारों तोला सोना दान करने का, उत्तम ब्राह्मण को सहस्रों करोड़ रत्नों के दान

का, गऊ-वैष्णव-स्वामी के लिये तन त्याग का, दुःखियों के दुःख को दूर करने का, एवं तीर्थ-सेवा से जो फल मिलता है वही पुण्य-फल श्रीकृष्ण जयंती व्रत करने से प्राप्त हो जाता है।"

(औदुम्बर संहिता-पृ. २१४)

न वेदैर्न पुराणैश्च मया दृष्टं महामुने।
यत्समं वाऽधिकं चापि कृष्णजन्माष्टमीव्रतम्।।

(स्कन्दपुराण)

हे महामुने ! श्रीकृष्ण जन्माष्टमी व्रत के समान अन्य कोई पुण्य न मैंने वेदों में देखा न पुराणों में।

अतः ऐसी महिमामयी श्रीकृष्णाष्टमी का व्रत अवश्य करें, परन्तु शास्त्र में बताये गये लक्षणों के अनुसार ही करें, जैसा कि 'पद्मपुराण' में कहा है-

पञ्चगव्यं यथा शुद्धं न ग्राह्यं मधुसंयुतम्।
रविविद्धा सदा त्याज्या रोहिणीसंयुताष्टमी।।
रोहिणी बुध संयुक्ता अष्टमी च यदा भवेत्।
सा प्रयत्नेन कर्तव्या दृश्यते सप्तमी यदि।।

(पद्मपुराण)

जिस प्रकार मधु से युक्त पञ्चगव्य त्याज्य है, उसी प्रकार सप्तमी से विद्धा अष्टमी; चाहे वह रोहिणी से युक्त भी क्यों न हो त्याज्य ही है। रोहिणी और बुधवार से युक्त भी अष्टमी हो तो भी सप्तमी विद्धा होने पर व्रत न करे।

वर्जनीया प्रयत्नेन सप्तमी-संयुताष्टमी।
विना ऋक्षेण कर्त्तव्या नवमी संयुताष्टमी
पूर्वमिश्रा तदा त्याज्या प्राजापत्यर्क्षसंयुता।।

(ब्रह्मवैवर्तपुराण)

ब्रह्मवैवर्त पुराण के वचन है – सप्तमीयुक्त अष्टमी में व्रत न करे, नवमीयुक्त अष्टमी नक्षत्र रहित भी हो तो नक्षत्रयुक्त पूर्वविद्धा अष्टमी से उत्तम है। यही भाव स्कन्दपुराण के भी है-

सकलाऽपि सऋक्षाऽपि नवमीसंयुताऽपि च।
जन्माष्टमी पूर्वविद्धा न कर्त्तव्या कदाचन।।

नक्षत्रयुक्त, नवमीयुक्त भी अष्टमी यदि पूर्वविद्धा हो तो उस दिन व्रत न करे। भविष्यपुराण में कहा है–

नवम्यां योगनिद्राया जन्माष्टम्यां हरेरतः।
नवम्या सहितोपोष्या रोहिणी बुधसंयुता।।

(भविष्यपुराण)

अष्टमी को सर्वेश्वर श्रीकृष्णप्रभु का और नवमी को योगमाया का प्राकट्य हुआ था। इसलिये बुधवार और रोहिणी नक्षत्रसहित नवमी में व्रत करे।

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन त्याज्या सैवाशुभा बुधैः।
वेधे पुण्यं क्षयं याति तमः सूर्योदये यथा।।

(स्कन्दपुराण)

इसलिये बुधजनों को चाहिये– अशुभ विद्धा अष्टमी का व्रत न करें, क्योंकि जिस प्रकार सूर्योदय होने पर अन्धकार नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार वेध से पुण्य क्षीण हो जाता है। हमारे परमगुरु श्रीआदिकुमारों ने नवमीयुक्त शुभ अष्टमी में व्रत का अनन्त पुण्य बतलाया है–

उदये चाष्टमी किञ्चिन्नवमी सकला यदि।
जन्माष्टमी तु सोपोष्या मखकोटिफलप्रदा।।

(श्रीसनत्कुमार)

तिथि उदयकाल में पलभर भी अष्टमी हो, फिर सम्पूर्ण नवमी हो तो उसी में व्रत करे। उससे करोड़ो यज्ञों के समान पुण्य होता है। ऐसे ही वचन पितामह के हैं।

मुहूर्त्तेनापि सम्पूर्णा संयुक्ता साष्टमी भवेत्।
किं पुनर्नवमीयुक्ता कुलकोट्यास्तु मुक्तिदा।।

(श्रीपितामह)

एक घड़ी अष्टमी भी नवमीयुक्त हो तो करोड़ों कुल वालों को मुक्त कर देती है।

जन्माष्टमी के दिन देवालय को अलंकार, ध्वजा, चित्र आदि से सजावे, कदली के खम्भ बनावे। रात्रि जागरण में शांतिपाठ, सहस्रनाम, चरित्र का पाठ तथा वाद्य बजावे, नृत्य व कीर्तन करे। अर्द्धरात्रि में श्रीकृष्णप्रभु के प्रादुर्भाव की भावना करे। फिर श्रीविग्रह को पञ्चामृत आदि से महास्नान करावे। केशव का पूजन गुरुप्रदत्त मन्त्र से करे। पूजा के पश्चात् भक्तिपूर्वक शंखोदक से अर्घ प्रदान करे। भगवान को धूप–दीप, नैवेद्य–सुन्दर फल, पक्वान्न अर्पित करे। तत्पश्चात् धूप और आरती करे। प्रातः 'दधि–काँदो' उत्सव करे। अर्थात् नवनीत, दही, मठा में हल्दी आदि मिश्रित कर परस्पर वैष्णव विनोदपूर्वक एक दूसरे पर छिड़कें। सरिता आदि में स्नान करे। उत्सव के अन्त में भगवत्प्रसादी द्वारा वैष्णवों को भोजन कराये और उन्हें दक्षिणा दें, जैसा कि 'वायुपुराण' में कहा है–

भगवदवशेषेण प्रियेणैव महात्मना।
वैष्णवान् भोजयेद्भक्त्या तेभ्यो दद्यात् प्रदक्षिणाम्।।

(वायुपुराण)

वैष्णव–भक्तों के बाद स्वयं अपने मित्र–बंधुओं सहित पारणा अर्थात् प्रसाद ग्रहण करे। इस प्रकार से जो व्रतोत्सव करते हैं, वे अपने सुमनोरथों को प्राप्त करके श्रीराधाकृष्ण–धाम को प्राप्त कर लेते हैं।

श्रीराधा जयन्ती महोत्सव–

'वायुपुराण' में श्रीराधा जयन्ती महोत्सव बड़े हर्षोल्लास के साथ मनाने के लिये कहा है–

शुक्लाष्टम्यां तु हरेर्वाराधा–जन्ममहोत्सवः।
करणीयोऽधिकः प्रेम्णा कृष्णजन्माष्टमीव्रतात्।।

(वायुपुराण)

भाद्र शुक्ला अष्टमी को श्रीराधा जयन्ती महोत्सव श्रीकृष्ण–जन्माष्टमी से भी विशेष रूप से मनाना चाहिये। इसी प्रकार भाद्रपद शुक्ला

द्वादशी को श्रीवामनभगवान की जयन्ती तथा चैत्र शुक्लपक्ष में श्रीराम–जयन्ती का शुद्धा नवमी को ही व्रत करना तथा महोत्सव मनाना चाहिये।

कलिकाले भविष्यन्ति सम्प्रदायाभिमानिनः।
कृष्णकुमार–नारद–निम्बार्कादि महासताम्।।
तेषां भ्रममहाम्बुधितरणाय सुपोतवत्।
एकादशी कृष्णोत्सवव्रतमेकं तु वर्णितम्।।
स्वसम्प्रदाय–संस्कारव्रतं वक्ष्ये सनातम्।।

(श्रीऔदुम्बरसंहिता १५७८.१५७६)

श्रीनिम्बार्काचार्यप्रभु– हे निवासादिक शिष्यवृन्द ! कलियुग में बहुत से सम्प्रदायाभिमानी होंगे, किन्तु हमने यह श्रीहंस, श्रीसनकादि, श्रीदेवर्षिवर्य एवं हमारे मतावलम्बी तथा अन्य वैष्णवों को भ्रम–समुद्र से तरने के लिये तरणी (नौका) के सदृश यह प्रथम एकादशी – श्रीकृष्णादि महोत्सव–व्रत बतला दिया है। अब 'स्वसंम्प्रदायिक–संस्कार व्रत' अर्थात् व्रतपञ्चक का द्वितीय व्रत– स्वैतिह्य पञ्चसंस्कार विधिव्रत बतलाते है, जो सनातन से चला आ रहा है–

व्रतपंचक का द्वितीय व्रत –

स्वैतिह्यसंस्कार विधिव्रत (पंचसंस्कार)

श्रीनिवासजी– हे कृपा निधान प्रभो ! आपने अपनी दिव्य कृपारूपी वृष्टि से अभिसिञ्चित कर हमें अपने श्रीचरणों का आश्रय दिया है और परम्परागत साम्प्रदायिक वैष्णवी–दीक्षा प्रदान कर वैष्णव–पद से अलंकृत किया है। हे आचार्यचरण ! हमारी प्रवल इच्छा है कि आप हमें पञ्चसंस्कार–रूपी वैष्णव–भूषणों के स्वरूपों का परिबोध करायें, आपकी बड़ी कृपा होगी।

श्रीनिम्बार्काचार्य प्रभु–

त्वं श्रीनिवासानुग सन्निबोध मे, समुच्यमानं विविधार्यसङ्गतम्।।
स्वैतिह्यसंस्कार–विधिव्रतं शुभं राधामुकुन्दांघ्रितयानुदर्शनम्।।

(औदुम्बरसंहिता)

हे निवासानुग ! अनेकानेक अर्थों से संगत स्वैतिह्य–संस्कार–विधिव्रत अर्थात् वैष्णवों के पञ्चसंस्कार व्रत को तुम मुझसे श्रवण करो, जिससे श्रीराधामुकुन्द प्रभु के चरणारविन्दों का दिव्य दर्शन प्राप्त हो सके।

श्रीनिम्बार्काचार्यप्रभु– हे समस्त वैष्णव वृन्द ! श्रीवृन्दावन–गोलोक, साकेत, वैकुण्ठादि दिव्य धामों में सबको प्रवेश नहीं मिलता। अलौकिक देश में प्रवेश प्राप्त करने के लिये पहचान की आवश्यकता होती है। वह पहचान सर्वेश्वर श्रीहरि की पंच–संस्कारपूर्वक पराभक्ति है। यह पराभक्ति चिह्न से चिह्नित होने पर ही द्वारपालों से एवं अतिवाहिकों अर्थात् सूक्ष्म शरीर को दूसरा शरीर प्राप्ति कराने में सहायक देवताओं के द्वारा सत्कृत–सम्मानित– पूजित होकर वैष्णव–भक्त नित्य वृन्दावन–गोलोकादि विष्णुधामों में प्रवेश कर सकता है। यह साध्यभक्ति तथा साधन–भक्ति भी गुरु शरणागति के बिना, गुरुदेव की निष्काम सेवा–पूजा के बिना, पञ्चसंस्कार–पूर्वक वैष्णवीय–दीक्षा प्राप्त किये बिना नहीं मिलती। श्रीगुरुवर्य कृपापूर्वक दिव्यदेश प्रवेश का चिह्न प्रदान करते हैं। जिस

चिह्न को प्राप्त कर मनुष्य कृतकृत्य हो जाते हैं, वे विलक्षण चिह्न हैं सत्त्वगुणमय दिव्य शंख–चक्र–तिलकादि इन चिह्नों से अलंकृत होकर वैष्णव इस जगत् में भक्त्यानन्द को प्राप्त करता हुआ प्रारब्ध के अन्त में निजस्वरूप धारण कर भगवद्धाम को प्राप्त होता है।

अतः वैष्णव–मात्र को शंखचक्र–तिलकादि चिह्न तथा पराभक्ति परमावश्यक है। जो मोहवश अथवा शास्त्ररूप अरण्य में भटकने के कारण अथवा प्रमादवशतः पापतापहारी शंखचक्र–तिलक, तुलसी कण्ठी धारण नहीं करते हैं। उसके द्वारा की गयी भक्ति–साधना–आराधना सब कुछ निष्फल हो जाती हैं।

तापं पुण्ड्रं तथा नाम मन्त्रो यागश्च पञ्चमः।
अमी हि पञ्चसंस्काराः परमैकान्तहेतवः।।

(पञ्चरात्र–पद्मपुराण)

तथा–

ॐ यो वै लोकपावनीं तुलसी–काष्ठजामालां कण्ठे।
निर्धारयति सजीवन्मुक्तो भवति सलोकपावनो भवति।।

(सामवेद)

वेद–पुराणादि शास्त्र में पञ्चसंस्कारों का सविस्तार परिवर्णन किया गया है। संस्कारों का क्रम यह है–१. ऊर्ध्वपुण्ड्र (खड़ा तिलक), २. शंखचक्र धारण ३. तुलसी कण्ठी धारण–मन्त्रोपदेश, ४. भगवत्संबंधी नामकरण, ५. याग अर्थात् भगवत्सेवा–पूजन–नाम–यज्ञ। इन संस्कारों के बिना श्रीहरि की आराधना नहीं होती। इनमें से किसी एक संस्कार के अभाव में पञ्चसंस्कार अपूर्ण हैं। पाँचों के बिना साम्प्रदायिक वैदिक वैष्णव नहीं हो सकता। अतएव वैष्णव–मात्र के लिये ताप–तिलकादि सर्वदा ग्राह्य, पूज्य–सेव्य तथा धारण करने योग्य हैं। हे वैष्णववृन्द ! अब आप सभी शास्त्र वचनानुसार तिलक धारण की महिमा, धारण न करने के परिणाम, तिलक का आकृति–स्वरूप तथा धारण–विधि पूर्ण मनोयोग के साथ श्रवण करें।

प्रथम संस्कार–

ऊर्ध्वपुण्ड्र (तिलक) संस्कार

यजुर्वेद के हिरण्यकेशि शाखा और अथर्ववेद के याज्ञवल्क्योपनिषद् में कहा है–

हरेः पादाकृतिमात्मनो हिताय मध्यच्छिद्रमूर्ध्वपुण्ड्रं यो धारयति स परस्य प्रियो भवति स पुण्यवान्भवति स मुक्तिभाग्वति।

अर्थात् "अपने आत्मा के हित के लिये मध्य छिद्र वाला अर्थात् श्यामश्री युक्त हरिचरणाकृति तिलक को जो धारण करता है, वह परमपद को प्राप्त होता है। पुण्य और श्रेष्ठतम भगवद्भावापत्ति मोक्ष का भागी होता है।"

ग्रहा न पीडयन्ति न राक्षसांगणा यक्षाःपिशाचोरगभूतनायकाः।
ललाटपट्टे सुत ! गोपिचन्दनं संतिष्ठते यस्य मम प्रभावात्।।

श्रीहरि कहते हैं – "जिनके ललाट में गोपीचन्दन का ऊर्ध्वपुण्ड्र लगा रहता है, तो मेरे प्रभाव से उस प्राणी को ग्रह, राक्षस, यक्षगण, पिशाच, सर्प और भूतनायक भी पीड़ा नहीं पहुँचाते हैं।"

यस्मिन् गृहे तिष्ठति गोपिचन्दनं भक्त्या ललाटे मनुजो विभर्ति चेत्।
तस्मिन् गृहेऽहं निवसामि सर्वदा श्रियान्वितः कंसनिहा चतुर्मुख।।

श्रीकृष्णप्रभु कहते हैं– "जिसके घर में गोपीचन्दन रहता है और जो मनुष्य भक्तिपूर्वक गोपीचन्दन से ऊर्ध्वपुण्ड्र (तिलक) को ललाट पर धारण करता है, तो हे ब्रह्मन् ! उसके गृह में कंस का वध करने वाला मैं सदा–सर्वदा श्रीराधा के सहित निवास करता हूँ।"

अशुचिर्वाप्यनाचारो मनसा पापमाचरन्।
शुचिरेव भवेन्नित्यमूर्ध्वपुण्ड्राङ्कितो नरः।।

(ब्रह्मपुराण)

अपवित्र हो अथवा आचार से रहित हो, या मन से पाप करने वाला हो ऊर्ध्वपुण्ड्र (तिलक) धारण करने से निरन्तर पवित्र होता है।

ऊर्ध्व पुण्ड्रधरो मर्त्यो म्रियते यत्र कुत्रचित्।
श्वपाकोपि विमानस्थो मम लोके महीयते।।

(ब्रह्मपुराण)

"सर्वेश्वर श्रीकृष्ण कहते हैं कि ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करने वाला शरीर–त्याग किसी भी जगह करे, वह विमान पर बैठकर मेरे धाम को पहुँचता है, चाहे वह श्वपच अर्थात् शूद्र, अछूत, निम्नजाति का व्यक्ति ही क्यों न हो।" ऐसे ही उर्ध्वपुण्ड्र (तिलक) महिमा के अनेक वचन है।

हे प्रपन्नजन ! तिलक–संस्कार के बिना कुछ भी धार्मिक कृत्य नहीं करना चाहिये। जैसा कि स्कन्दपुराण में भगवद्वाक्य है–"ऊर्ध्वपुण्ड्र किये बिना जो कोई सत्कर्म भी करे, तो उससे होने वाले यश दान तप होम स्वाध्याय पितृ तर्पण आदि सब भस्मवत् अर्थात् विनष्ट हो जाते हैं।" पद्मपुराण में भी ऐसा ही कहा है–

ऊर्ध्वपुण्ड्रविहिनस्तु पुण्यं किञ्चित् करोति यः।
इष्टापूर्तादिकं सर्वं निष्फलं स्यान्न संशयः।।

(पद्मपुराण)

"ऊर्ध्वपुण्ड्र बिना किये हुए इष्टापूर्तादिक अर्थात् अग्निहोत्र, आतिथ्य, वेदाध्ययन तथा समस्त धार्मिक कृत्य सभी निष्फल हो जाते हैं।"

तिलक का स्वरूप–

श्रीहरि स्वयं हमारे परमगुरु श्रीसनत्कुमारों के प्रति कहते हैं–

नासिकामूलमारभ्य ललाटान्तसमन्वितम्।
साधिकाङ्गुलान्तरालमधिकं तूत्तरोत्तरम्।।
रेखाद्वयविनिर्मितं स मृजुं हरिमन्दिरम्।
व्रीहिमात्रं पृथुं पार्श्वे चतुरङ्गुल लम्बकम्।।

"त्रिभागो मूलमुच्यते" अर्थात् नासिका के दो भाग को छोड़कर ऊपर का तीसरा भाग मूल कहा गया है। नासिका के दो भाग छोड़कर तीसरे भाग से लेकर ललाट के केश पर्यन्त ६ अंगुल लम्बा, मध्य का अन्तर एक अंगुल से कम न हो, वल्कि इससे अधिक हो।

इस प्रकार सुन्दर दो रेखा बनायें, जो चावल–धान प्रमाण पतली हों। नीचे पार्श्व–बगल में कुछ मोटा हो। इसका नाम हरिमन्दिर है।" इस प्रकार शास्त्र प्रमाण के अनुसार रचित तिलक ही सुन्दर "हरिचरणाकृति" के सदृश स्पष्ट दृष्टिगोचर होगा।

हे शिष्यवृन्द ! अब आप इस हरिचरणाकृति सुन्दर हरिमन्दिर (तिलक) में श्रीराधाकृष्ण–स्वरूप 'श्यामश्री' के धारण–विधि एवं उसका स्वरूप श्रवण करें, जैसा कि शास्त्रों में परिवर्णित है–

श्यामश्री धारण–विधि एवं स्वरूप–

श्यामबिन्दुरिति प्रोक्त श्चक्षुर्मध्ये भ्रुवि स्थितः।
तस्य दर्शनमात्रेण महापातक–नाशनम्।।

(कुमारतंत्र)

श्यामबिन्दु–धारण–विधि के संबंध में कहा है– कि नेत्रों के मध्यभाग में भ्रकुटियों के बीचोबीच श्यामश्री लगायें। उसके दर्शन करने मात्र से महापातक–महापाप भी नष्ट हो जाते हैं।

कृष्णपदोर्ध्वरेखा या सोर्ध्वपुण्ड्रं प्रकीर्तितम्।
तस्य मध्ये तु संस्थाप्य श्यामविन्दुं विशेषतः।।

(कुमारतंत्र)

ऊर्ध्वपुण्ड्र (तिलक) श्रीकृष्णप्रभु के चरणों की ऊर्ध्वरेखा है, उस तिलक के मध्य में विशेष रूप से श्याम–विन्दु धारण करे।

यद् विन्दुधारणाद् ब्रह्मा सृष्टिं वितनुते ध्रुवम्।
विन्दोश्च धारणाच्छम्भुः संहर्ता सर्वतत्त्ववित्।।

(कुमारतंत्र)

जिस विन्दु को धारण करने से ब्रह्माजी तो सृष्टि रच देते हैं और महादेव जी सब तत्त्वों को जानते हुए संहार करते हैं।

विन्दोश्च धारणाद् दुर्गा महिषासुरमर्दिनी।
तथा तद्धारणाच्छक्रः सर्वैश्वर्यमवाप्नुयात्।।

(कुमारतंत्र)

तथा विन्दु धारण से भगवती दुर्गा ने महिषासुर को मार गिराया और उसके धारण करने से इन्द्र सब ऐश्वर्य को प्राप्त हुए।

विशेष महिमा विन्दोर्न कश्चिद् वक्तुमर्हति।
विन्दुप्रभावमात्रेण शेषोऽभूद्धरणीधरः।।

(कुमारतंत्र)

इस विन्दु की अधिक महिमा कोई करही नहीं सकता। विन्दु के प्रभाव से ही शेषनाग ने पृथ्वी को धारण किया।

श्यामविन्दुः सदा धार्यः कुण्डयुग्मसमुद्भवम्।
पङ्कं सेवेत यो भक्त्य राधाकृष्णप्रियो हि सः।।

(ब्रह्माण्डपुराण)

श्रीब्रह्माण्डपुराण में कहा है– श्यामाविन्दु नित्यप्रति लगानी चाहिये, जो प्रेम से राधाकुण्ड और श्यामकुण्ड की रज लगाता है, वह श्रीराधाकृष्ण का प्रेम–पात्र होता है।

हरिमन्दिर–मध्ये तु श्यामविन्दु र्विधायते।
मृदो हि राधाकुण्डस्य श्यामकुण्डस्य वा मुने !।।

हे मुने ! राधाकुण्ड और श्यामकुण्ड की रज की श्यामविन्दु पुण्ड्र (तिलक) के बीच में लगानी चाहिये।

कज्जलस्य गिरेश्चैव राधाकुण्डविशेषतः।

(नारदपञ्चरात्र)

'श्रीनारदपाञ्चरात्र' में कहा है– श्रीजगन्नाथपुरी के पास कज्जलगिरि है, व्रज में गिरिराज की तलहटी में राधाकुण्ड है। इस कुण्ड की मृतिका से श्यामश्री लगायें अथवा कज्जलगिरि पाषाण से श्यामश्री धारण करे।

"कज्जाकारं समं मध्ये धारयेद्हरिमन्दिरे।"

(कूर्मपुराण)

नेत्र के मध्य रहने वाला काला गोलक के तुल्य श्यामबिन्दु को हरिमन्दिर रूप तिलक में दोनों भ्रकुटि के ठीक मध्य में धारण करे।

ऊर्ध्वपुण्ड्रस्य मध्ये तु विशालेषु मनोहरे।
सान्तराले समासीनो हरिस्तत्र श्रिया सह।।

(पद्मपुराण)

"अन्तराल अर्थात् दोनों रेखाओं के मध्य अन्तर बाला विशाल सुन्दर तिलक में भ्रुवों के मध्य श्यामश्री स्वरूप में प्रेम की अधिष्ठात्री श्रीराधाजी के सहित श्रीकृष्ण एक साथ अवस्थित हैं।" इस बिन्दु का नाम 'श्यामश्री' है। इसके कई भाव हैं जैसे– श्याम के सहित राधा 'श्यामश्री' है। द्वितीय – श्यामस्वरूप–वर्ण होने से 'श्यामश्री' है। तृतीय– 'श्याम' अर्थात् कृष्ण, 'श्री' अर्थात् शोभा, सौंदर्य, संपत्ति, विभूति–शक्ति, प्रभा, यश, सिद्धि, शुभ, सुन्दर, श्रेष्ठ राधा इन दिव्य–गंभीर अर्थों से युक्त श्रीराधा ही श्यामसुन्दर की सर्वश्री हैं, सर्वस्व हैं। इसीलिये 'श्यामश्री' है। चतुर्थ भाव है– "राधां कृष्णस्वरूपां वै कृष्णं राधास्वरूपिणं" भावानुसार श्याम ही श्री अर्थात् राधा हैं तथा श्री ही श्याम हैं। सदा–सर्वदा एक स्वरूप द्वै नाम हैं। श्रीराधाकृष्ण के इसी अभिन्न–एकात्म स्वरूप का प्रतिरूप अथवा प्रतिमा का नाम ही 'श्यामश्री' है। ऐसी महिमामण्डित दिव्य श्यामश्री को हरिमन्दिर मध्य नित्यप्रति प्रतिष्ठापित करनेवाले वैष्णव–भक्त परम सौभाग्यशाली हैं।

श्रीनिवासजी – हे श्रीआचार्यपाद ! एक ही श्यामश्री को श्रीराधा स्वरूप अथवा लक्ष्मीस्वरूप या हरिस्वरूप कहा है, एक बिन्दु तीनों स्वरूप कैसे हो सकता है? आप कृपापूर्वक हमें इस रहस्य को बतलाइये।

श्रीनिम्बार्काचार्यप्रभु – हे परम वैष्णवजन ! जैसे एक शालग्राम–श्रीविग्रह श्रीराधाकृष्ण, श्रीलक्ष्मीनारायण तथा श्रीसीताराम कहाते हैं। उसी प्रकार एक श्यामबिन्दु श्रीराधा एवं श्रीकृष्ण स्वरूप है।

हमारे गुरुदेव श्रीदेवर्षिवर्य ने 'पञ्चरात्र' में तिलक और श्यामश्री का एक और रूप दर्शाया है–

तिलकं कृष्णरूपं स्याद्विन्दुरूपा च राधिका।
स एव कर्म चाण्डालो बिन्दुं च यो न धारयेत्।।

(श्रीनारदपञ्चरात्र)

श्रीगुरुवर्य ने ऊर्ध्वपुण्ड्र (तिलक) को सर्वेश्वर श्रीकृष्ण में प्रतिपादित (घोषित) किया है तथा तिलक मध्य भ्रकुटियों के बीच में श्यामविन्दु को श्रीराधारूप में निरूपित किया है। यदि जो साधक-वैष्णव श्यामविन्दु रहित केवल तिलक धारण करे उसे अत्यन्त निम्नकोटि रूप में वर्णित किया है। अतः श्यामविन्दु सहित ही तिलक धारण करे।

मन्दिरं सततं धार्यं श्यामविन्दुसमन्वितम्।
ज्ञान-वैराग्यसिद्ध्यर्थं प्रेमभक्तिकहैतुकम्।।

(व्रत निर्णय)

श्रीराधाकृष्ण की प्रेमाभक्ति के लिये एवं ज्ञान वैराग्य की सम्प्राप्ति निमित्त श्यामश्री सहित ललाट पर हरिमन्दिर सर्वदा धारण किये रहना चाहिये।

श्यामविन्दुसमायुक्तं श्रीहरिमन्दिरं शुभम्।
धारणं युग्मसेवीनां सखिभावरतात्मनाम्।।

(व्रत निर्णय, अप्रकाशित पृ. ३७)

"सखीभाव में लीन, निकुञ्जविहारी श्रीश्यामाश्याम की अनन्य-अभिन्न सेवा में तल्लीन रसिकभक्तों को श्यामश्री समन्वित श्रीहरिमन्दिरात्मक अतीव शुभकारी तिलक निश्चित रूप से धारण करना परम अभिष्ट है।" अब आप सभी वैष्णव भक्त तिलक हेतु द्रव्य निर्णय एवं धारण करने की विधि श्रवण करें-

ऊर्ध्वपुण्ड्र हेतु द्रव्य निर्णय एवं धारण विधि-

सर्व चन्दनों में श्रेष्ठ गोपीचन्दन है। 'श्रीवासुदेव-उपनिषद्' में इसकी उत्पत्ति का वर्णन किया गया है-

श्रीब्रह्मादिक देवों द्वारा श्रीकृष्ण के श्रीअंगों में चर्चित चन्दन को गोपियों ने स्नान के समय मार्जन किया था, उसी का नाम गोपीचन्दन

है। वह दिव्य सौरभमय चन्दनयुक्त जल जहाँ पर एकत्रित हुआ, वही गोपी–तालाब नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह स्थल श्रीद्वारकापुरी और भेट द्वारका के मध्य स्थित है। इस चन्दन को खोदने से उसमें शंक–चक्र के चिह्न स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं।

श्रीगरुड़पुराण में तुलसी के नीचे की मृतिका से नित्यप्रति तिलक करना शुभप्रद बतलाया है–

"तुलसी मृतिका पुण्ड्रं यः करोति दिनेदिने।"

(गरुड़पुराण)

श्रीपद्मपुराण में 'हरिक्षेत्रे' अर्थात् समस्त भगवद्धामों, तीर्थों तथा 'तुलसीवने' अर्थात् श्रीवृन्दावनधाम की दिव्य मृतिका से तिलक धारण करने वाले को श्रीहरि का सान्निध्य प्राप्त होना बतलाया है।"

गोपीचन्दन में, तुलसीवन–वृन्दावनधाम, तुलसी के नीचे की तथा अन्य दिव्य स्थलों की मृतिका को अल्पमात्रा में मिश्रित कर श्रीयमुना, श्रीराधाकृष्ण–कुण्ड, प्रेमसरोवर के पवित्र जल से पाशा बना कर रख लें। स्नान के पश्चात् नित्यप्रति अपने बाँये हाथ में श्रीयमुना जल लेकर, दिव्य मृतिका मिश्रित गोपीचन्दन घीसकर शलाका से उसमें षट्कोण चक्र बनायें और उसके मध्य 'मूल मन्त्र' का प्रथम अक्षर 'कामबीज' लीखे, फिर उसको दाहिने हाथ की हथेली से ढँककर १० बार 'मूलमन्त्र' से अभिमन्त्रित करके अपने परमाराध्य श्रीराधाकृष्ण के मधुर युगलनामों का उच्चारण करते हुए सर्वप्रथम ललाट पर ऊर्ध्वपुण्ड्र करें, द्वितीय उदर पर, तृतीय हृदयपर, चतुर्थ कण्ठ पर, पंचम दाहिनी कुक्षि (कोख) पर, षष्ठम दाहिनी भुजा पर, सप्तम दाहिने कन्धे पर, अष्टम बायीं कोख पर, नवम बायीं भुजा पर, दशम बायें कन्धे पर, एकादशवाँ पीठ पर और द्वादशवाँ तिलक कटि भाग पर करें।

तिलक करने में अँगुलियों का उपयोग–

अनामिका कामदा प्रोक्ता मध्यमायुः करी भवेत्।
अंगुष्ट पुष्टिदः प्रोक्तस्तर्जनी मोक्षसाधनी।।

(स्मृति)

एक अँगूठा और तीन अँगुली इन चार में से चाहे जिससे तिलक कर सकते हैं। अनामिका अँगुली से तिलक करने पर कामनायें सफल होती हैं। मध्यवाली अंगुली से तिलक करने पर आयु की वृद्धि होती है। अँगूठा से करने पर शरीर की पुष्टि होती है और तर्जनी अँगुली से तिलक करने पर मोक्ष-प्राप्ति में सहयोग मिलता है।

हथेली पर लगे हुए अवशिष्ट चन्दन को जल में भिगोकर शिखा पर पोंछ देवें। उसके बाद पुनः हथेली में जल लेकर शेष चन्दन का पान कर लें।



श्रीगोवर्द्धन में श्रीनारदाश्रम-श्रीनारदकुंड, श्रीनिम्बग्राम-श्रीरंग-सुदर्शनकुंड एवं श्रीनिवासाश्रम-श्रीराधाकुंड-महिमा

नारदाश्रम महा महिमा, नारदकुण्ड में न्हाइए।
युगलजू कौ ध्यान करि, तहाँ श्रीनारद गुण गाइए।।
निम्बपुर की अमित महिमा, रंगकुण्ड में न्हाइए।
श्रीनिम्बादित चरणमें तहाँ, अनन्य चित्त लगाइए।।
श्रीनिवासाश्रम सु महिमा, अनन्त श्रीकुण्ड वर्ण कौ।
स्नान करि तहाँ ध्यान धरि, मन श्रीनिवास सुचरण कौ।।

—श्रीरूपरसिकदेव कृत 'श्रीहरिव्यासयशामृत'

द्वितीय संस्कार–

शंख–चक्र–संस्कार

शंखचक्र का महत्व किसी भी सनातनी से छिपा नहीं है। यह दोनों श्रीसर्वेश्वर प्रभु के इतने प्रिय है कि सुदर्शनचक्र के बिना श्रीहरि की भी सुरक्षा संकट में पड़ जाती है और शंख की अनुपस्थिति में भोजन ही बंद हो जाता है अर्थात् भोग नहीं लगता। शंख के बिना पूजा एवं सभी वैदिक कर्म अधूरे और अशुद्ध हैं। ये दोनों ही श्रीसर्वेश्वरप्रभु के अन्तरंग सेवक (पार्षद्) हैं। जो प्रभु के अतिशय प्रिय पार्षदों–सेवकों से प्रेम करता है, वह प्रभु का परमप्रिय हो जाता है। श्रीसर्वेश्वर प्रभु की प्रियता–प्रसन्नता ही भजन का परमफल है। शाश्वत–अचलभक्ति का व्यवधान रहित कारण है। इस दृष्टि से भी प्रत्येक भगवत्भक्त, मुमुक्षु वैष्णव को शंखचक्र चिह्न अंकित करना चाहिये। शंखचक्र धारण करने की उत्कृष्ट महिमा वेद–पुराणों में विस्तारपूर्वक वर्णित है, कई अज्ञ, अशिक्षित एवं विद्वान् आक्षेप करते हैं कि शङ्ख–चक्र धारण करने का वेद में कहाँ उल्लेख है और शङ्ख–चक्र धारण करने से धारक पतित होता है। इन सबकी अज्ञानमूलक धारणाओं को दूर करने हेतु प्रथम शङ्ख–चक्र धारण में वेद–प्रमाण प्रस्तुत है–

दक्षिणे तु भुजे विप्रो बिभृयाद् वै सुदर्शनम्
सव्यशङ्खं बिभृयाच्च इति वेदविदो विदुः।।मंत्र८।।

अथर्ववेद महोपनिषद् ब्रह्मसूक्त में कहा है– "बुद्धिमान व्यक्ति दाहिनी भुजा में चक्र तथा वायीं भुजा में शंख धारण करें। ये ही वैदिकों का सिद्धान्त है।

धृतोर्ध्वपुण्ड्रः कृतचक्रधारी विष्णुं परं ध्यायति यो महात्मा। स्वरेण मन्त्रेण सदा हृदिस्थितं परात्परं यन्महतोमहान्तम्। यजुर्वेद, कठशाखा, ३ प्रश्न, ३ अनुवाकः।

भगवद्–भक्त मस्तक में ऊर्ध्वपुण्ड्र (तिलक) धारण कर बाहों में

शंख-चक्र धारण करे।

सामवेद के मैत्रायणीय शाखा में-

पवित्रं वैअग्निरग्निर्वै सहस्त्ररः सहस्त्रारोनेमिर्नेमिनातप्ततनुर्ब्राह्मणः सायुज्यं सालोकतामाप्नोति। साममैत्रायणी ३ शाखाः ३ खण्ड०।।

पवित्र है, इसलिये अग्नि है। लोक में अग्नि पवित्र करती है। अग्नि सुदर्शन है, और कैसा सुदर्शन है हजार अर जिसके नेमि में है। नेमि से तप्त शरीर ब्राह्मण सायुज्य-सालोक्य मोक्ष को प्राप्त होता है।

अथर्वण रहस्य कौशकेयी शाखा में-

चक्रंबिभर्तिवपुषाभितप्तं बलंदेवानाममितस्यविष्णोः।
स एतिनाकं दुरिता विधूय प्रयान्तियद्यतयोवीतरागाः।।

अथर्वण रहस्य के ५ ब्राह्मण - अध्या. ८।

भाषा-देवानां एकवचनस्थाने बहुवचनं देवस्येत्यर्थः। देवस्यामितस्यविष्णोः, देव अपरिमित व्यापक स्वरूप विष्णु के बलं आयुधं, अभितप्तं संस्कारेण वह्नौ तापितं चक्रं चक्रराजं सुदर्शनं वपुषाविभर्ति, शरीर से धारण करता है। सः धारकः धारण करने वाला। दुरिता इति दुरितान् विधूय शुभाशुभ कर्मों को त्याग कर नाकं एति, मोक्ष को प्राप्त होता है। नाक शब्दार्थ श्रुति कहती है। यत् यत्र जिस जगह, वीतरागायतयो विशन्ति। इस लोक पर लोक भोगवासनारहित यतयः इन्द्रियों को दमन करने वाले सर्व कर्म त्याग कर विशन्ति यान्ति दोनों पाठ हैं, प्राप्त होते हैं। यह श्रुति ऋग्वेद के वाष्कल संहिता में भी है।।

अथर्वण रहस्य कौशकेयी शाखा में-

एभिरुरुक्रमस्यचिह्नैरङ्किता लोके सुभगा भवामः।
तद्विष्णोः परमं पदं ये गच्छन्ति लाञ्छिताः।।

भाषा-उरु क्रमस्य विष्णोः, उरु क्रम नाम विष्णु के एभिर्चिह्नैः, शंखचक्र चिन्हैः शखचक्र के चिह्नों से अङ्किताभुजयोरित्यर्थः भुजों में

अङ्कित लोके सुभगा भवामः, वयमित्यर्थः। संसार में हम लोग पुण्य के भागी हो गये। ये लाञ्छिताः शंखचक्र धारिणः शंखचक्र धारण करने वाले गच्छन्ति यत्रेतिशेषः जाते हैं जहाँ, तद्विष्णोः परमं पदं, वही विष्णु का परम पद स्थान हैं।।

शुल्क यजुर्वेद में वाजसनेयी उक्त शतपथ ब्राह्मण में–

कात्यायिनी पप्रच्छयाज्ञवल्क्येतिहोवाच देवासः पितरोयेनविधृतेन बाहुना सुदर्शनेन प्रयाताः स्वर्गलोकमायान्ति येनाङ्किता मनवो लोकसृष्टिं वितन्वन्ति ब्राह्मणास्तद्वहन्ति। अग्निनावै होता तप्तं चक्रं द्विभुजेधार्य्यमित्यूर्ध्व पुण्ड्रमालिखेत्तस्माद् द्विरेखा भवति पुनरागमनं न याति ब्राह्मणः सायुज्यं सालोकतां जयति यएवंवेद।

अनुवाक ६।।

भाषा–कात्यायनी ने याज्ञवल्क्य से पूछा। याज्ञवल्क्य इति होवाच याज्ञवल्क्य कहते हैं, देव पितृगण जिस सुदर्शन के बाहु में धारण करने से स्वर्ग में निवास करते हैं, जिस सुदर्शन के धारण बाहों में करने से मनु लोकों की पालना करते हैं, ब्राह्मण अपने बाहों में धारण करते हैं। अग्नि से तप्त सुदर्शन को होता धारण करें, बाद मस्तकादिकों में ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण करने से ऊर्ध्व पुण्ड्र में खड़ी दो रेखा होती हैं, इस तरह चक्रादि ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण करने से फिर संसार में जन्म नहीं होता है, ब्राह्मण सायुज्य सालोक्य मोक्ष को प्राप्त होता है। जो इस तरह जानता है, सो भी मोक्ष को प्राप्त होता है।।

यजुर्वेद के कठशाखा में–

चरणं पवित्रं विततं पुराणं येन पूतस्तरति दुष्कृतानि।
येन पवित्रेण शुद्धेन पूता अतिपाम्मानमरातिं तरेम।

प्रश्न ३ अनुवादक ३।।

सुदर्शनस्य, चरणं चिह्नं पवित्र पापनाशनं विततं सर्वलोकेषु प्रसिद्धं व्याप्तं वा, पुराणं ब्रह्मादिदेवैर्धारितं अतएव पुराणं, येन सुदर्शनेन, धारणेन पूतः पवित्रीभूतः, जनः। दुष्कृतानि पापानि

तरति। तेन सुदर्शनेन पवित्रेण पापनिवर्तकेन शुद्धेन अग्निनातप्तेन पूता बाहौ धारणेन पवित्री भूता वयमितिशेषः। अति पाप्मानं दुःखहेतुं अरातिं संसारं तरेम।

भाषा–सुदर्शन के चिह्न पाप नाशक समस्त लोकों में प्रसिद्ध व्यास ब्रह्मादि देव धारण किये हैं, इसलिये पुराण है। जिस सुदर्शन के धारण से पवित्र जन पापों से निवृत्त होता है। पाप नाश करने वाले अग्नि से तप्त सुदर्शन धारण से पवित्र हम लोग दुःख के कारण संसार को तर जावेंगे।

आथर्वाणिक सुदर्शनोपनिषद् विष्णु सूक्त में–

निचिक्षेप सुषणं विद्यमानं मध्येबाहुमदधत्सुदर्शनं, विष्णोरिदं भूरि तेजः प्रघर्षति दिवानक्तं बिभृयुस्तज्ज्नासः। निचिक्षेप सुषणं प्रहारेण शत्रूणां विधर्षणं विद्यमानंवेद शास्त्रादिषु प्रसिद्धं भूरि तेजः कोटिसूर्यपरिमिततेजः। दिवानक्तं दिवासूर्यस्य रात्रौ चन्द्रादीनां तेजः प्रधर्षति स्वतेजसा तिरस्करोति। एवं भूतं विष्णोरिदं सुदर्शनं मध्ये बाहु मध्ये अदधत्। देवाधृतवन्तः। जनासः जना लोके बाहु मध्ये बिभृयुः। धारणं कुर्वन्तु।

भाषा–प्रहार करने से शत्रुओं के विजय करने वाला, वेद शास्त्रों में प्रसिद्ध कोटि सूर्य के तुल्य तेज वाला, दिन में सूर्य के, रात्रि में चन्द्रादिकों के तेज को अपने तेज से तिरस्कार करने वाला– इस तरह विष्णु के ऐसे सुदर्शन को बाहु के मध्य देवता धारण करते हैं। मनुष्य लोक में बाहु मध्य धारण करें।।

ऋग्वेद में–

चमूषत् श्येनः शकुनो विभृत्वा गोविन्दुदृप्ता आयुधानि बिभ्रत्। अपामूर्मिंसचमानः समुद्रं तुरीयं धाम महिषोविवक्ति अष्टक ७। अध्या. ४। मण्डल ६।

चमूषत्श्येनः शकुनइति पक्षिविशेषः। यदि, गोविन्दुः गोविन्दस्य

दृप्ताआयुधानि अग्निनातप्तायुधानि चक्रादीन् विभृत्वा धृत्वा बिभ्रत् गच्छेत् शरीरं त्यक्त्वा इत्यर्थः अपामूर्मिं समुद्रं जलानामाकरं समुद्रं तद्वत् जन्ममरणादिषडुर्मिमन्तं संसारसमुद्रं। सचमान उल्लंघ्यमानः तुरीयं धाम मोक्षधाम विवक्ति गच्छति। महिषः मनुष्यः यदि चक्रादीन् बिभृयात्तर्हि किं वक्तव्यम्।

भाषा–पक्षी यदि गोविन्द के अग्नि से तप्त चक्रादि को धारण कर शरीर त्याग कर जाता है तो जलों के खजाना समुद्र है, उसके तुल्य जन्म मरण ६ ऊर्मिवाला संसार समुद्र लांघते हुये मोक्ष धाम को जाता है। मनुष्य यदि चक्रादिकों को धारण करे तो क्या कहना।।

ऋग्वेद वह्वृचवाष्कल शाखा में–

प्रेते विष्णो अब्जचक्रे पवित्रे जन्माम्भोधिं तर्तवे चर्षणीन्द्राः मूलेबाह्वोर्दधते ऽन्येपुराणा लिङ्गान्यङ्गेतावकान्यर्पयन्ति।

शाख ३ अनुवाद ५।

हे विष्णो ते तव अब्जचक्रे पद्मचक्रे पवित्रे अग्निसंतप्ते संसारनिवर्तके वा जन्मांभोधितर्तवे, जन्ममरणादिस्थान संसारसागरतितीर्षवः। चर्षणीन्द्राः चर्षणयो मनुष्या इन्द्रोदेवः बाह्वो मूले दधते। अन्ये पुराणाः सनकादि भृगवादि महर्ष– यः हेअंगप्रेष्ठ विष्णो तावकानि चक्रादीनि लिंगानि चिह्नानि बाह्वोः मूले अपर्यन्ति अङ्कयन्ति।

भाषा–हे विष्णो ! आपके पद्म–चक्र को अग्नि से तप्त संसार निवर्तक जन्म–मरणादि के स्थान संसार–सागर तरने की इच्छा वाले मनुष्य इन्द्र देव बाहों के मूल में धारण करते हैं और सनकादि भृग्वादिमहर्षि गण हे प्रिय विष्णो ! चक्रादि चिह्नों को बाहों के मूल पर अङ्कित करते हैं।।

सर्वकर्माधिकारश्च शुचीनामेव चोदितः।
शुचित्वं च विजानीयान्मदीयायुधधारणात्।।

(गरुड़पुराण)

समस्त धार्मिक कृत्य करने की पात्रता–योग्यता हेतु पवित्रता आवश्यक है। श्रीहरि कहते हैं कि जब तक मेरे प्रिय आयुध शंखचक्र धारण नहीं करता है, तब तक प्राणी पवित्र नहीं होता है।

अग्निहोत्रं यथा नित्यं वेदस्याध्ययनं यथा।
तथैवेदं ब्राह्मणस्य शङ्खचक्रादिधारणम्।।

(पद्मपुराण)

ब्राह्मण के जैसे अग्निहोत्र, वेद को पढ़ाना नित्य कर्म है, ऐसे ही शंखचक्र धारण भी नित्यकर्म है।

मच्चक्राङ्कितदेहो यो भद्भक्तो भुवि दुर्लभः।
नैवाप्नोति वशं मृत्योरप्याज्ञा–भंगकृन्नरः।।

(मत्स्यपुराण)

भगवान् के वचन है कि मेरे प्रिय चक्र से अंकित देह वाला मेरा भक्त है, उसके दर्शन भूमि में भाग्य से होता है। इस प्रकार का भक्त, मेरी आज्ञा भंग करने वाला यमराज के भी आधीन नहीं होता है।

कृत्वा काष्ठमयं बिम्बं कृष्णशस्त्रैश्च चिह्नितम्।
यो ह्यङ्कयति चात्मानं तत्समो नास्ति वैष्णवः।।

(पद्मपुराण)

काष्ठ के फलक बनाकर श्रीकृष्णप्रभु के आयुध शंखचक्र से चिह्नित कर जो अपने बाहूमूल में अंकित करता है, उसके समान वैष्णव अन्य कोई नहीं है।

कृष्णायुधाङ्कितदेहो गोपीचन्दनमृत्स्नया।
प्रयागादिषु तीर्थेषु स गत्वा किं करिष्यति।।

गोपीचन्दन मृतिका से जो शीतल शंखचक्र धारण करता है, उसका शंखचक्रायुध से अंकित देह, प्रयाग आदि तीर्थों में जाकर क्या करेगा। अर्थात् सर्व तीर्थों का फल उसे शंखचक्र मुद्रा धारण करने से ही प्राप्त हो जाता है।

लीलयापि लिखेद्यस्तु बाहुमूले सुदर्शनम्।
कुलकोटिं समुद्धृत्य स गच्छेत् परमां गतिम्।।

(वामनपुराण)

जो यों ही अर्थात् खेल–खेल में भी बाहुमूल में चक्रसुदर्शन को अंकित करता है, वह करोड़ों कुलों का उद्धार कर भगवद्धाम को चला जाता है।

दृष्ट्वा चक्राङ्कितं मर्त्यं मरणे पर्य्युपस्थिते।
यमदूताः प्रणश्यन्ति आगच्छन्ति हरेर्गणाः।।

(ब्रह्माण्डपुराण)

मृत्युकाल उपस्थित होने पर चक्र से अंकित इस लोक में रहने वाले प्राणियों को देखकर यमदूत भाग जाते हैं और श्रीहरिदूत उपस्थित हो जाते हैं।

अपने आश्रमों–गृहों तथा द्वारों पर शंखचक्र–तिलक के चिह्न अवश्य लगाने चाहिये। पुनः पुनः उनके दर्शन से, उन दिव्यस्वरूपों के नीचे से निकलने से विघ्नहरण के साथ ही सर्वविध मंलगप्रद होता है।



श्रीनिम्बार्कप्रभु द्वारा द्वारकापुरी में तप्तमुद्रा–संस्कार का पुनः शुभारम्भ

छंद

शास्त्र विधि अनुसार, तप्त मुद्रा धारण की।
भई विलुप्त सो प्रकट करी, विधि भवतारन की।।

श्रीनिम्बार्कप्रभु ने तीर्थयात्रा क्रम में अनेक दिव्य उदार लीलायें कीं और भारत–भ्रमण करते हुए श्रीद्वारकापुरी पधारे। सतयुग में यहाँ श्रीसनकादिकों द्वारा संस्थापित शंखचक्रांकित तप्तमुद्रा–संस्कार का श्रीनारदजी द्वारा अभिवर्द्धन–रक्षण हुआ था, यह संस्कार–विधि जो वर्तमान में लुप्त हो गयी थी पूज्य आचार्यप्रभु ने शास्त्रानुसार तप्तमुद्रा का पुनः शुभारम्भ किया–

श्रीद्वारकां यत्र परंपरास्थं वुद्ध्वानुकारं प्रणमामि तं त्वाम्।
श्रीकृष्णशिष्यैः सनकादिकार्यैविज्ञानवृद्धैः सुसदाभचन्द्रैः।।
संस्थापितस्तप्तसुसंस्क्रियौघस्संरक्षितस्ताननुवर्तमानैः।
श्रीनारदाद्यैर्हरिभक्तिरक्तैः संस्कारविस्तारकरैः स्वकाले।।

(श्रीनिम्बार्कविक्रांति १०३.१०४)

जहाँ पर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के शिष्य श्रेष्ठ सत्ख्याति के आह्लादक अतएव विज्ञान वृद्ध या विद्यमान श्रेष्ठ चन्द्रमा की आभा के समान श्रीसनकादिक महर्षियों ने तप्तमुद्रा धारणरूपी संस्कार की स्थापना की, और सत्संस्कारों की अभिवृद्धि करने वाले भगवद्भक्ति में सदा अनुरक्त श्रीनारदादिक महर्षियों ने अपने समय में उस संस्कार की रक्षा की है, उसी श्रीद्वारका को आप पधारे और वहाँ पर परम्परा से समागत तप्तमुद्रा–संस्काररूपी कर्म का अनुकरण करने वाले आपको मैं बारम्बार प्रणाम करता हूँ।

श्रीसनकादिकों द्वारा संस्थापित तप्तमुद्रा–संस्कार विधान का वर्णन 'श्रीप्रह्लादसंहिता' में भी किया गया है–

स्वकीयशिष्यद्वारैव कलिदोषनिवृत्तये।
स्थापितानि द्वारावत्यां कुमारैः सम्प्रदायतः।।

(प्रह्लादसंहिता)

अपने शिष्य श्री सनकादि के माध्यम से कलिकाल के दोषों का नाश करने के लिये द्वारावती में सत् सम्प्रदायपूर्वक शंखचक्रादि स्थापित किये गये हैं अर्थात् विधान बनाया गया।

शीतल मुद्रा तो प्रत्येक वैष्णवों के लिये नित्यप्रति धारण करना अनिवार्य है, वैष्णवाचार्यों ने तप्तमुद्रा के प्रति भी विशेष बल दिया है। आचार्यों द्वारा अंगीकृत–अनुपालित तथा शास्त्र की आज्ञा होने से तप्तमुद्रा निर्विवाद ग्रहण किया जा सकता है, जैसा कि हमारे धर्मशास्त्रों में उल्लेख है–

अग्नितप्तं सदा धार्यं द्वारावत्यां विचक्षणैः।
नान्यस्थाने जातु राजन् ! सत्यमेतद् ब्रवीमिते।।

(पद्मपुराण)

विद्वानों को द्वारका में सदा अग्नि से तपायी हुई शंख–चक्र मुद्रा धारण करनी चाहिये। हे राजन् ! कदाचित् भी अन्य स्थानों में धारण न करें। मैं आप लोगों के लिये सत्य कहता हूँ।

दीक्षाकाले शयन्याञ्च प्रबोधिन्यां यथाविधि।
द्वारकायां सदा धार्या तप्तमुद्रा तु वैष्णवैः।।

(औदुंबरसंहिता १५३४)

देवशयनी एवं देव प्रबोधिनी के दिन द्वारका में और दीक्षा के समय विधिपूर्वक तप्तमुद्रा धारण करे।

ब्रह्मचारीगृहस्थोपि वानप्रस्थोऽथभिक्षुकः।
अश्वयं धारयेच्चक्र मग्नितप्तमतन्द्रितः।।

(ब्रह्मपुराण)

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यासी वर्ग सभी प्रकार सावधान होकर अवश्य अग्नि से तप्त चक्र धारण करें।

द्वादशारं तु षट्कोणं वलयत्रयसंयुतम्।
हरेः सुदर्शनं तप्तं धारयेत्तद्विचक्षण।।

(नारद पंचरात्र)

बारह आरो वाला, षट्कोण वाला, तीन वलय वाला अग्नि से तप्त श्रीहरि के आयुध चक्र को बाहु में जो धारण करता है, वही बुद्धिमान है।

चतुर्थं द्वारकास्थानं मद्धाम सुरसेवितम्।
तत्राह हेतिनासाध्वि तापयामि तनुं नृणाम्।।

(वृहद् नारदीय)

चतुर्थ धाम द्वारकापुरी देवों से सेवित मेरा धाम है। उस द्वारका में शंख–चक्रादि से हे पृथ्वी ! मनुष्यों के शरीर मैं ही तापता हूँ अर्थात् तप्त–मुद्रा देता हूँ।

इससे सिद्ध होता है कि शीतल मुद्रा दीक्षा काल में गुरु के हाथ से कहीं भी ले सकते हैं, परन्तु तप्तमुद्रा शास्त्रानुसार द्वारका में ही लें। वहाँ किसी के हाथ से भी लें, श्रीहरि वचनानुसार वह मुद्रा मैं ही देता हूँ। भगवान् तो गुरुओं के गुरु हैं। अतः तप्त शंख–चक्र गुरु से लेना हो चुका।

तप्तचक्रेण विधिना बाहुमूले ही लाञ्छितः।
पुनाति सकलं लोकं नारायणस्य चार्घ्यवत्।।

(वृद्धहारित स्मृति)

विधिपूर्वक तप्तचक्र से बाहुमूल में चिह्नित वैष्णव सम्पूर्ण लोकों को पवित्र कर देता है। जैसे श्रीहरि का चरणोदक सबको पवित्र करता है।



तृतीय संस्कार–

तुलसी कण्ठी धारण संस्कार

श्रीहरिप्रिया, वृन्दा, पावनी, पवित्रादि नामों से अभिवंद्य तुलसी की दिव्यता, विशिष्ठता, उत्कृष्ठ महिमा का पुराणादि शास्त्र में प्रचुर वर्णन किया गया है, जैसे कि–

कण्ठलग्ना तु या माला सा कण्ठी परिकीर्तिता।
तस्याधारणमावश्यं कर्तव्यं द्विजसत्तमैः।।

(प्रह्लादसंहिता)

जो तुलसी माला कण्ठ से लगी रहती है, वह माला कण्ठी कहलाती है। उस (दोहरी) कण्ठी माला को संस्कृत ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य कभी न त्यागे।

तुलसी काष्ठमालां च कण्ठस्थां वहते तु यः।
अप्यशौचो ह्यनाचारो मामेवैति न शंसय।।

(विष्णुधर्म)

विष्णुधर्मग्रंथ में भगद्वाक्य है कि तुलसी काष्ठमाला को जो कण्ठमें धारण करता है, वह अपवित्र हो, चाहे क्रिया से हीन हो, निःसन्देह मेरे को ही प्राप्त होता है।

यत्कण्ठे तुलसी नास्ति ते नरा मूढमानसाः।
अतः सर्वेषु कालेषु धार्या तुलसीमालिका।
क्षणार्धं तद्विहीनोपि विष्णुद्रोही भवेन्नरः।।

(पद्मपुराण)

जिसके कण्ठ में तुलसीमाला नहीं है, वह अपने धर्म से पतित है। इसलिये सर्वकाल में तुलसीमाला धारण करनी चाहिये। एक क्षण क्या अर्धक्षण भी तुलसी त्यागने से मनुष्य श्रीसर्वेश्वर प्रभु का द्रोही–अपराधी होता है।

यज्ञोपवीतवद्धार्य्या सदा तुलसीमालिका।
नाशौचं धारणे तस्या यतः सा ब्रह्मरूपिणी।।

(पद्मपुराण)

यज्ञोपवीत के समान तुलसीमाला निरन्तर धारणीय है। सदैव धारण करने से तुलसी कण्ठी अपवित्र नहीं होती है, क्योंकि परमपावन तुलसी भगवत्स्वरूपा हैं। अतः जन्म–मृत्यु या ग्रहण आदि के किसी अशौच–सूतक काल में कण्ठीमाला बदलने की आवश्यकता नहीं है।

तुलसी काष्ठमालां यो धृत्वा स्नानं समाचरेत्
पुष्करे च प्रयागे च स्नातं तेन मुनीश्वर।।
तुलसीकाष्ठमालां यो धृत्वा भुंक्ते द्विजोत्तमः।
सिक्थे सिक्थे स लभते वाजिमेधफलं मुने।।

(स्कन्दपुराण)

श्रीहरि कहते हैं कि जो तुलसी–काष्ठमाला को कण्ठ में धारण कर स्नान करता है, हे मुनिश्वर ! उसका पुष्करराज–प्रयागराज का स्नान हो चुका। हे द्विजोत्तम हे मुने ! जो जन तुलसी–काष्ठमाला को कण्ठ में धारण कर भोजन–भगवत्प्रसाद ग्रहण करता है, वह जितनी बार ग्रास मुख में डालता है, उतने अवश्मेध यज्ञ के फल को पाता है।

धारयन्ति न ये मालां हेतुकाः पापबुद्धयः।
नरकान्न निवर्तन्ते दग्धाः कोपाग्निना हरेः।।

(गरुड़पुराण)

तुलसीमाला कण्ठ में धारण करना व्यर्थ है, ऐसा समझने–कहनेवाले कुतर्की–पापबुद्धि तुलसी को कण्ठ में धारण नहीं करते हैं। वे श्रीहरि के क्रोधाग्नि से संतप्त हो जाते हैं और नरक से कभी निवृत्त नहीं होते हैं। अतः शास्त्र प्रमाणों के अनुसार शुभप्रद तुलसी–कण्ठीमाला निरन्तर धारणीय है। दीक्षा–संस्कार के समय श्रीगुरुदेव के करकमलों से कण्ठीमाला धारण करें अन्य समय में यदि नवीन कण्ठी धारण करना है, तो उसे श्रीयमुनाजल–शुद्धजल से प्रक्षालित कर निजाराध्य के समक्ष पात्र में रखें। तुलसीकण्ठी का पूजार्चन करें, फिर वाँयीं हथेली पर कण्ठी को रखकर उसे दाहिनी हथेली से ढकें और ११ बार मूलमन्त्र से अभिमंत्रित करे। धारण के समय आराध्यदेव–श्रीगुरुदेव का स्मरण करते हुए तुलसी की प्रार्थना करें। प्रार्थना मन्त्र–

तुलसीकाष्ठसम्भूते माले कृष्णजनप्रिये।
बिभर्मि त्वामहं कण्ठे कुरु मां कृष्णवल्लभम्।।
यथा त्वं वल्लभा विष्णोर्नित्यं विष्णुजनप्रिया।
तथा मां कुरु देवेशि नित्यं विष्णुजनप्रियम्।।

तुलसीकाष्ठ से उत्पन्न श्रीकृष्ण के भक्तों को प्रिय हे माले ! मैं आपको कण्ठ में धारण करता हूँ। मुझे आप श्रीकृष्ण का प्रिय करें। जैसे आप कृष्ण की निरन्तर वल्लभा हैं और उनके भक्तों की प्रिय हैं। वैसे ही हे देवेशि ! मुझको भी श्रीकृष्ण के तथा श्रीकृष्ण के दास के प्रिय बनायें।

मन्त्रोपदेश–संस्कार

समस्त संस्कारों में तथा वैष्णव के पञ्चसंस्कार कौस्तुभों में मन्त्रोपदेश–दीक्षा संस्कार सर्वश्रेष्ठ है। दीक्षासंस्कार के आभाव में सर्व संस्कार अपूर्ण हैं। शास्त्र–विहित सद्‌गुणों से सम्पन्न वैष्णव–गुरु से साम्प्रदायिक–मंत्र ग्रहण किये बिना जप, पूजा, व्रत, याग, दानादि शुभकर्म भी शिला पर बोये हुए बीज के सदृश सर्वथा निष्फल हो जाते हैं। अभिप्राय यह कि श्रीगुरु–परम्परा से प्राप्त मन्त्रदीक्षा के बिना किसी भी देवता की अर्चना–आराधना नहीं की जाती है, लिखित मन्त्र कंठस्थ करके पूजा करने का शास्त्र में निषेध किया गया है। अतः इष्टदेव की उपासना करने हेतु सद्‌गुरुदेव से परम्परागत मन्त्रोपदेश ग्रहण करना मानव मात्र के लिये अत्यावश्यक है। माया–मोह से मोहित होकर भवटवी में भ्रमित प्राणियों को भगवन्निष्ठ, शास्त्रविज्ञ, विरक्त वैष्णवगुरु स्व स्वरूप (निज दासत्व) तथा स्वदेश–निजधाम में प्रवेश करने का सुपथ दर्शाते हैं अर्थात् सम्प्रदायरूप, शिक्षा, श्रीराधाकृष्ण आराधना का उपदेश कर परमलक्ष्य–श्रीधाम वृन्दावन की ओर अग्रसित करते हैं। शिष्य के लिये श्रीगुरुदेव कर्णधार हैं और उनके द्वारा दिया हुआ उपदेश ज्ञान ही संसार–सागर से पार करने वाली नौका है। अतः भवसिन्धु से पार होने के लिये परमवैष्णव श्रीगुरुदेव की शरण ग्रहण करनी चाहिये।

सामवेदीय 'छान्दोग्य उपनिषद्' ने गुरु शरणागति पर अत्यधिक बल देकर सबको गुरुशरण ग्रहण का आदेश दिया है–

"यथा सौम्य पुरुषं गन्धारेभ्योऽभिनद्धाक्षमानीय तं ततो विजनेविसृजेत् स यथा तत्र प्राङ्वोदङ्वाऽधराङ्वा विसृष्टः तस्य यथाभिनहनं प्रमुच्य ब्रूयादेतांदिशं गन्धारा एनांदिशं ब्रजेति, स ग्रामाद्ग्रामं पृच्छन् पंडितो मेधावी गंधारान्नेवोप सम्पद्येतैवंमेवेहाचार्यवान् पुरुषोवेद" अतएव "आचार्य देवो भव"?

अर्थात्– हे सौम्य ! (शिष्य) जैसे चोर किसी पुरुष के आँखों में पट्टी बाँध, उसका सर्वस्व हरण कर गन्धार देश से लाकर वन में छोड़ दे। तो वह नहीं जान सकता है; कि मेरा गन्धार देश पूर्व में है, या उत्तर में, या पश्चिम में है। तदनन्तर यदि गन्धार देश का ज्ञाता तथा दयालु कोई व्यक्ति उसके आखों की पट्टी खोलकर बतला दे, कि इस दिशा में गन्धार देश है, और रास्ते में अमुक–अमुक ग्राम मिलेंगे। यह सुनकर यदि वह ग्राम से दूसरे ग्राम को पूछता हुआ ठीक बतलाये गये मार्ग से चला जाय तो शीघ्र अपने देश में पहुँच जाता है। वैसेही मायारूपी चोर ने पुरुषरूपी जीव के आखों में पट्टी बाँध (अर्थात् उसके धर्मभूत ज्ञान को आवरण कर) सर्वस्व हरण कर (अर्थात् प्रजापति विद्या के बतलाये हुए जीव–वृत्ति गुणाष्टक को छीन) गंधारदेश रूप स्वस्वरूप ज्ञान से लाकर वनरूप संसार–सागर में छोड़ दिया। अतः जीवन को नहीं ज्ञात है कि मेरा स्थानरूप भगवच्चरणारविन्द किधर हैं, मैं कहाँ हूँ, मैं किस ओर जाऊँ। उस समय भगवच्चरणाविंद के स्वरूप का ज्ञाता तथा दयालु गुरुदेव यदि उसकी मायारूपी पट्टी को खोल कर उस देश में जाने का मार्गरूप–सम्प्रदाय की शिक्षा देकर अर्चिरादि पद्धतिरूप ग्रामों को बतादे। और शिष्य भी श्रीगुरुदेव के शिक्षानुसार विधिवत् सम्प्रदाय की पद्धति का अनुगामी होकर चले, तो शीघ्र अर्चिरादि पद्धति के रास्ते भगवद्भावापत्तिरूप अपने गृह में पहुँच जायगा। अतएव श्रुति कहती है कि तुम आचार्य के उपासक हो।

किन्तु गुरु की शरण जाने से पूर्व यह अवश्य जान लेना चाहिये कि इनमें शास्त्र–वर्णित लक्षण है या नहीं; क्योंकि जैसे टूटी नौका पर बैठकर कोई भी विशाल नदी से पार नहीं हो सकता, वैसे ही सम्प्रदाय–ज्ञानहीन गुरु के उपदेश से भी विशाल भवसिंधु का पार होना असंभव है। अतएव श्रुति ने गुरु का लक्षण "श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्" बतलाया है। अर्थात् श्रोत्रिय उत्तमकुल, जात तथा शब्दब्रह्म (वेद) और परंब्रह्म श्रीकृष्ण में जिनकी निष्ठा हो, ऐसे गुरुदेव की शरण जानी चाहिये। स्मृतियों में तो बहुत ही स्पष्ट कहा है–

"आचार्यो वेद सम्पन्नो विष्णुभक्तों विमत्सरः।
मन्त्रज्ञो मन्त्र भक्तश्च सदामन्त्राश्रयः शुचिः।।
गुरु–भक्ति समायुक्तः पुराणज्ञो विशेषतः।
एवं लक्षण सम्पन्नो गुरुरित्यभिधीयते।।"

आचार्य (स्वयं आचरणशील) वेद पढ़ा हुआ, विष्णुभक्त, मत्सर (दूसरे के उत्कर्ष को न सहना) से रहित, इष्टमन्त्र का जानने वाला, इष्ट–मन्त्र में भक्ति रखने वाला, हर समय इष्ट–मन्त्र के आश्रित रहने वाला, पवित्र रहने वाला, निज गुरुदेव की भक्ति (सेवा) करने वाला, विशेषकर पुराणों का जानने वाला, यह सब लक्षण जिसमें हे, उसको गुरु कहना चाहिये। ऐसे गुरु की शरण जाने के लिये श्रुति–स्मृतियों ने आज्ञा दी है।

सम्प्रदायविहिना ये मन्त्रास्ते निष्फला मताः।
परम्परागता ये तु ते कृष्णकरुणान्विताः।।

(पद्मपुराण)

भगवद्विषयक अनेक मन्त्र हैं, जिस मन्त्र का सम्प्रदाय–परम्परागत उपदेश नहीं है, वह मन्त्र निष्फल है। जिस मन्त्र का सम्पद्राय की गुरु–परम्परा से उपदेश होता आ रहा है, वह मन्त्र श्रीकृष्ण–कृपा से युक्त है, अर्थात् उस मन्त्र को आचार्यगुरु से लेने पर परमफल प्राप्त होता है।

महाकुलप्रसूतोऽपि सर्वयज्ञेषु दीक्षितः।
सहस्रशाखाध्यायी च न गुरुः स्यादवैष्णवः।।

(श्रीनारदपञ्चरात्र)

हमारे गुरुदेव श्रीदेवर्षिजी ने पञ्चरात्र में कहा है कि चाहे वह सर्वोत्तम ब्राह्मण कुल समुत्पन्न, सर्वयज्ञो में दीक्षित, वेद की सहस्र शाखाओं का पाठक भी यदि अवैष्णव अर्थात् तिलक, शंखचक्र, तुलसी–कंठीमाला, वैष्णव मन्त्र, याज्ञ–सस्कारों से रहित है, तो उसे गुरु नहीं बनाना चाहिये।

अवैष्णवोपदिष्टेन मन्त्रेण निरयं व्रजेत्।
पुनश्च विधिना सम्यग्वैष्णवाद् ग्राहयेन्मनुम्।।

(श्रीनारदपञ्चरात्र)

अवैष्णव से विष्णु–दीक्षा लेने से शिष्य नरक को जाता है। यदि अवैष्णव से वैष्णव–मंत्र लिया हो, तो पुनः विधि–पूर्वक वैष्णव–आचार्य से मन्त्रोपदेश लेना चाहिये।

अष्टादशाक्षरं मन्त्रं यावद्गुरोर्न धारयेत्।
तावत् किमपि नेहेत सन्मन्त्रसंस्क्रियां विना।
समीहितस्य सर्वस्य निष्फलत्वाद्धि सर्वथा।।

(मन्त्रसंस्कार)

'मन्त्रसंस्कार' में कहा गया है कि अष्टादशाक्षर आदि मन्त्र जब तक गुरुदेव से प्राप्त न करें, तब तक जप आदि समस्त सत्कर्म निष्फल हैं। इसी भाव के श्रीविष्णु–वाक्य हैं–

सन्मन्त्रसंस्क्रियाहीनो वैदिकं लौकिकं चरन्।
अपि कर्मफलं नैति मूलहीनो यथा तरूः।।
मन्त्रहीनो नरो नित्यं रिक्तो ज्ञेयो बहिर्मुखः।
मन्त्रराजवियुक्तो यो नावाप्नोति क्रियाफलम्।।

(श्रीविष्णुवचन)

जिस प्रकार मूल–जड़हीन वृक्ष के फल नहीं आता, उसी प्रकार बिना मन्त्रसंस्कार के जप आदि समस्त क्रियायें निष्फल हैं।

हरिमनुरहितः कर्माचरन्यो मनुष्यः सकलमपि सविद्यः सारहीनो यथा द्रुः।
न तु फलमधिगच्छेत् कर्मणस्तस्य साक्षाद्धरिगुरुबहिरास्यः स्यात्स विष्वक् निरासः।।

(श्रीनारदजी)

हमारे श्रीगुरुदेव ने भी यही कहा है – श्रीहरि के मन्त्र की दीक्षा न लिया हुआ चाहे कैसा भी विद्वान् क्यों न हो वह सारहीन वृक्ष की तरह है, उस हरिगुरु विमुख को कर्मों के अभिष्ट फल नहीं मिलते। वह सब प्रकार से निरास हो जाता है।

एवं स्यान्मन्त्रसंस्कारं विना रिक्तः क्रियां चरन्।
तस्माद्यावन्न बिभृयान्मन्त्रं संस्कारमुत्तमम्।
तावत्तु मन्त्रसंस्कारव्रतं चरेत् क्रियां त्यजन्।।

(श्रीनारदजी)

मन्त्रसंस्कार के बिना कर्म करनेवाला फलों से रिक्त रहता है, अतः मन्त्रसंस्कार–व्रत का आचरण मनुष्य–मात्र को अवश्य करना चाहिये। वैष्णव–मन्त्रों की महिमा का परिज्ञान कराने वाले बृहत्तंत्र के ये वचन कितने महनीय हैं–

प्रजपन्वैष्णवान् मन्त्रान् यं यं पश्यति चक्षुषा।
पदा वा संस्पृशेद् सद्यो मुच्यते स महाभयात्।।

(बृहद्गौतमीयतंत्र)

अर्थात् वैष्णव–मन्त्रों का जाप करने वाला वैष्णवभक्त जिस–जिसको नेत्र से देखता है। अथवा चरण से स्पर्श करता है, तो वह त्वरित महाभय से मुक्त हो जाता है। शास्त्र के इन दिव्य वचनों से मनुष्य को स्वयं ही अनुभव कर लेना चाहिये कि सनातनी वैष्णव–मंत्रसंस्कार का कितना अद्भुत–अनुपम प्रभाव है। इसीलिये वेद शास्त्र में कहा गया है–

दुर्लभो वैष्णवो राजा, दुर्लभो विप्र वैष्णवः।
दुर्लभा वैष्णवा नारी, अतिदुर्लभदुर्लभाः।।

प्रथम तो वैष्णव राजा दुर्लभ है, यदि राजा वैष्णव हो तो समस्त प्रजा वैष्णव हो सकती है। वैष्णव–ब्राह्मण भी दुर्लभ है, यदि हो तो

शिष्यगण भी वैष्णव होंगे। वेद-शास्त्र में दीक्षा-संस्कार ग्रहण का अधिकार नारियों को भी है, कहा है- वैष्णव नारी अत्यंत दुर्लभ है, उसके वैष्णव होने पर पुत्र-पौत्रादि सभी वैष्णव होंगे। ऐसा होने पर सद्धर्म का प्रचार अनायास ही हो जायेगा। भाग्यशाली ही श्रीसर्वेश्वर प्रभु के भक्त हो पाते हैं। यह देवदुर्लभ मनुष्य जन्म बार-बार नहीं होता है। साम्प्रदायिक सद्गुरुदेव के बिना जीव का कल्याण नहीं होता है। अतः भक्त को वैष्णवगुरु से वैष्णवीय-मन्त्रदीक्षा ही ग्रहण करनी चाहिये।

श्रीनिवासजी- हे पूज्य आचार्यदेव ! शास्त्र में अदीक्षित प्राणी को मृतक कहा है- "दीक्षाहीनो मृतो नरः" (तंत्र), तो जीवंत (जीवित) जीव कैसे हैं?

श्रीनिम्बार्काचार्यप्रभु- हे वत्स ! जब मनुष्य श्रीगुरुदेव से दीक्षासंस्कार लेकर श्रीहरि की शरण ग्रहण कर लेता है, वेही जीव जीवित हैं। उन्हें ही जीता-जागता, प्राणधार समझना चाहिये।

श्रीनिवासजी- हे आद्याचार्य जगद्गुरो ! जीव तो जन्म लेकर जगत् में आ ही चुका है, फिर उसका पुनः जन्म कैसे? कृपया आप हमें इस रहस्य को बतलायें।

श्रीनिम्बार्काचार्यप्रभु- हे प्रिय शिष्य ! जैसा कि आगम में कहा है-

कृष्णमन्त्रोपदेशेन माया दूरमुपागता।
कृपया गुरुदेवस्य द्वितीयं जन्म कथ्यते।।

(आगम)

अर्थात् श्रीगुरुदेव महाराज कृपापूर्वक प्राणी को श्रीकृष्ण-मंत्र का उपदेश करते हैं, जिससे उसकी माया-अविद्या दूर हो जाती है। माया-प्रपंच से मुक्त होकर श्रीहरि की दास्यता ग्रहण कर लेना ही दूसरा जन्म कहलाता है।

श्रीनिवासजी– हे परमाचार्य प्रभो ! वैष्णवीय दीक्षासंस्कार के पश्चात् शरणागत के इस जन्म के वर्ण–जाति, गोत्र एवं नाम भी बदल जाते है। कृपा करके आप हमें इस तथ्य को भी समझायें।

श्रीनिम्बार्काचार्य– हे वैष्णववृन्द ! हमारे परमगुरुदेव श्रीसनकादिकों ने कहा है–

शरीरमेतौ कुरुतः पिता माता च भारत !
आचार्यप्रोक्ता या जातिः सा पुण्या साजरामरा।।

(श्रीसनत्सुजान)

माता और पिता इस शरीर का निर्माण तथा पालन–पोषण करते हैं। परन्तु श्रीआचार्यपाद ने हमें जो जाति अर्थात् वैष्णव वंश–कुल–परम्परा, वर्ण का पद तथा द्वितीय जन्म प्रदान किये हैं, वह पुण्य अर्थात् पवित्र, शुभ, प्रिय है तथा अजर–अमर अर्थात् शाश्वत है। अब आप सभी वैष्णव सन्त–भक्तजन गोत्र–परिवर्तन का भेद 'पञ्चरात्र' में कहे गये हमारे श्रीगुरुदेव के वचनानुसार श्रवण करें–

पितृगोत्री यदा कन्या स्वामीगोत्रेण गोत्रिका।
श्रीकृष्णभक्ति–मात्रेणऽच्युतगोत्रेण गोत्रिका।।

(श्रीनारदपंचरात्र)

हे वैष्णवभक्त ! जिस प्रकार पिता के गोत्र की कन्या पाणिग्रहण होते ही पति के गोत्र की हो जाती है। अर्थात् उसका पितृ गोत्र छूट जाता है और पति गोत्र ही उसका गोत्र बन जाता है। इसी प्रकार श्रीआचार्यगुरु द्वारा दिये गये श्रीराधाकृष्ण–भक्ति उपदेश मात्र से संसारी जीव का संसारी गोत्र छूट जाता है और अच्युत गोत्र हो जाता है, अर्थात् भगवान् के गोत्र में उसका गोत्र सम्मिलित हो जाता है। अब आप सभी भगवच्चरणानुरागी जन 'नाम–संस्कार' के उत्कृष्ट स्वरूप–संबंधी शास्त्रोक्त वचनामृत का आस्वादन करें–

चतुर्थ संस्कार–

नाम–संस्कार

श्रीगुरुप्रदत्त मन्त्रोपदेश से दिव्य जन्म होते ही शरणागत को श्रीसर्वेश्वर प्रभु का दासत्व–वैष्णवपद प्राप्त हो गया। उस बड़भागी को कभी भी श्रीहरि से पृथक् (च्युत) न होने वाला अच्युत गोत्र भी प्राप्त हो गया। श्रीआचार्य–गुरुवर्य से उस वैष्णव का नाम–संस्कार होना परम आवश्यक है। वेदोक्त मन्त्र द्वारा श्रीगुरुदेव राधामाधव शरण, राधागोविन्दशरण आदि भगवन्नामों से शिष्य का नामकरण करते हैं। अथ 'नाम–संस्कार मन्त्र'–

ॐ अङ्गादङ्गात्सभ्भवसि ह्रदयादधिजायसे।
आत्मा वै पुत्रनामासि संजीव शरदः शतम्।।

नाम–संस्कार की महत्ता को दर्शाते हुए हमारे परमगुरुदेव श्रीसनकादि महर्षि कहते हैं–

असम्प्राप्य गुरोः साक्षान्नामसंस्कारमुत्तमम्।
हरिदासादिकं सिद्धं नाप्नोति सत्क्रियाफलम्।।
नामसंस्कारहीनेन कृतं न कुत्रचित् फलेत्।
सदपि कर्म विप्रेन्द्र भष्महुतं हविर्यथा।।

(श्रीसनकादि)

श्रीगुरुदेव से नाम–संस्कार कराये बिना सत्कर्मों का फल प्राप्त नहीं होता है। भस्म में दी हुई आहुतियों की भाँति निष्फल समझना चाहिये। इसी प्रकार हमारे गुरु प्रवर श्रीदेवर्षिजी के भी वचन हैं–

विना नाम चरन्धर्मं रिक्तो भवति मन्दधीः।
मुकुन्दनाम–संस्कार–विहीनस्तु बहिर्मुखः।।
विदधदपि सद्धर्मं फलं न पश्यति ध्रुवम्।
कृष्णभक्ति–विहीनो वा पाषंड्यर्पितवैभवः।।

(श्रीनारदजी)

जिसने श्रीगुरुदेव से नाम प्राप्त नहीं किया है, वह मन्दबुद्धि वाला सर्वधर्मों से रहित है। तथा मुकुन्द आदि भगवन्नाम–संस्कार बिना वह सदा श्रीहरि से विमुख है। वह चाहे कितना सत्कर्म क्यों न करे सब निष्फल हैं। उस भगवद्भक्ति हीन को पाखण्डी कहा है।

'ब्रह्मपुराण' के वचन है–

कृष्णदासादिकं नाम–संस्कारं यावदात्मनि।
निजगुरु–प्रसादेन प्रसिद्धं नैव धारयेत्।।
तावत्किमपि नेहेत सन्नामसंस्क्रियां विना।
समीहितस्य सर्वस्य निष्फलत्वात्तु सर्वथा।।

(ब्रह्मपुराण)

जब तक श्रीगुरुदेव की कृपा प्राप्त करके कृष्णदास आदि भगवत्संबंधी नाम धारण न करे अर्थात् नाम–संस्कार न करे, तब तक किसी भी सत्कार्य में सफलता नहीं मिलती है। अतः वैष्णव–मात्र को अपने श्रीगुरुदेव से अवश्य ही नामकरण करवाना चाहिये तथा विरक्तवैष्णव ही नहीं प्रत्येक वैष्णव को प्रत्येक कर्म–व्यवहार में श्रीगुरुप्रदत्त नाम का ही प्रयोग करना चाहिये। उसी दिव्य नाम में अभिनिवेश (दृढ़ अनुराग, आग्रह) होना चाहिये। मानव के पूर्व के संचित–कर्म, प्रारब्ध–लेख पूर्व नाम–जाति–जन्म के साथ थे, परन्तु अब श्रीगुरु–कृपा से वह दिव्य जन्म, दिव्य गोत्र एवं दिव्य नामधारी वैष्णव है, विशुद्ध भगवद्दास है। यही भाव रखते हुए शास्त्रविहित शुभ संस्कार का संचय तथा कर्तव्य–कर्म–सत्कर्म करते रहना चाहिये। सद्धर्म–सदाचार का परिपालन करते हुए अपने इष्ट आराध्य प्रभु के परम पावन नाम, रूप, लीला व धाम के चिन्तन में पूर्ण मनोयोग के साथ सर्वदा तत्पर रहना चाहिये।



पंचम संस्कार

याग–संस्कार

श्रीनिम्बार्काचार्यप्रभु– हे निवासादि शिष्यवृन्द ! भगवत्सेवा–पूजन, भजन–कीर्तन एवं नाम–यज्ञ को ही याग–संस्कार कहा गया है। इसके संबंध में सामवेद के वचन बड़े ही महत्वपूर्ण हैं–

ॐ योऽसौ नाम–यज्ञेन परमात्मानं स्वरेण नित्यं जपति ध्यानावस्थितः श्रीकृष्णं यो ध्यायति स महत्पुरुषो महतो महीयान् स नित्यं गोविन्दस्य सदृशो भवति।

(सामदेव)

'नाम–यज्ञ' अर्थात् अपने आराध्यदेव के श्रीयुगलनाम–संकीर्तन– "राधेकृष्ण राधेकृष्ण, कृष्ण कृष्ण राधे राधे। राधेश्याम राधेश्याम श्याम श्याम राधेराधे।।" का मधुरस्वर के साथ ध्यान में अवस्थित होकर नित्यप्रति गायन करें। इस प्रकार जो श्रीराधाकृष्ण का स्मरण करता है वह महत्पुरुषों में श्रेष्ठ है, महान् है। वह नित्य गोविन्द प्रभु के समान है। 'स्मृति' में कहा गया है–

अनिष्ट्वा यो हरिं त्वादावन्य–कर्म समाचरेत्।
अविपाको निराशः स्यादेकं यागं विना हि सः।।

(स्मृति)

याग–संस्कार के बिना अर्थात् भगवान् का भजन न करके अन्य कर्मों का आचरण करता है, वह सदैव निराश ही रहता है।

अविहित–हरियागो लौकिकं वैदिकं वा
सन्तमपि चरन् धर्मं मनुष्यः प्रवीणः।
न च फललवलेशं प्राप्नुयात्तु प्रयत्नै–
रकृतमखिलमेव स्याद्विना यागमेकम्।।

आगम में कहा है– भगवान् का भजन–पूजन किये बिना जो मनुष्य वैदिक एवं लौकिकधर्म का आचरण करता है, वह चाहे कितना

ही प्रयत्न करे याग–संस्कार (भगवत्पूजन) के बिना उसे किसी का कुछ भी फल प्राप्त नहीं होता है।

एवं स्याद् यागसंस्कारं बिना रिक्तश्चरेत् क्रियाम्।
तस्माद्यावन्न विभृयाद् यागसंस्कारमञ्जसा।।
तावत्तु यागसंस्कारव्रतं चेष्टां त्यजंश्चरेत्।
नित्यनैमित्तिकं धर्मं पारम्पर्यागतं ध्रुवम्।
आवश्यकं समीहेताहारादिकं त्यजन् व्रती।

(औदुम्बरसंहिता)

इसीलिये सर्वप्रथम भगवत् याग करना चाहिये। परम्परागत नित्य–नौमत्तिकों में आवश्यक स्नान, संध्यावन्दनादि नित्यकर्म के साथ भगवान् की सेवा–पूजा करें। तत्पश्चात् नैमित्तिक और आहारादि करें।

संस्कारान्यं च सेवेताहारादिकं त्यजन् व्रती।
एवं स्वैतिह्यसंस्कार–विधिव्रतं समाचरेत्।।
स्वैतिह्यसंस्कार–विधिव्रतं तु यो दध्यात् सदैवं सुविधानपूर्वकम्।
तस्याञ्जसा भागवतस्य दुर्लभा सर्वेश्वरे नन्दसुते रतिर्भवेत्।।

(औदुम्बरसंहिता)

इस प्रकार स्वैतिह्यसंस्कार अर्थात् स्वपरम्परागत–प्रमाणित पंच–संस्कार–व्रत का आप सभी वैष्णव–भक्त आचरण करे।

जो स्वैतिह्य–संस्कार विधिव्रत (पञ्चसंस्कार) को विधानपूर्वक सदैव धारण करता है, उसका श्रीराधासर्वेश्वर प्रभु के श्रीचरणों में सहज ही प्रेम हो जाता है।

राधामुकुन्दौ व्रजभूमिसंस्थितौ वृन्दावने रासविलासकारिणौ।
स्वैतिह्यसंस्कार–विधिव्रतांगकैराराधितौ नो व्रततः प्रसीदताम्।।

(औदुम्बरसंहिता)

स्वैतिह्य–संस्कार–विधिव्रत द्वारा आराधित व्रजमंडलस्थ श्रीवृन्दावन

में नित्य रासविहार करने वाले श्रीराधामुकुन्द प्रभु इस व्रत से हमारे ऊपर प्रसन्न हों।

हे वैष्णववृन्द ! श्रीराधासर्वेश्वर प्रभु की वन्दना के साथ ही स्वैतिह्य–संस्कारविधिव्रत अर्थात् वैष्णव–पञ्चसंस्कार– व्रत–वर्णन का हम यहीं पर विश्राम करते हैं।

श्रीनिम्बार्क–स्तुति

जय श्रीनिम्बारक जन उद्धारक शरणागत हितकारी।
जय श्री आचारज भक्तन कारज चतुरव्यूह अवतारी।।
जय नियमानन्दा आनन्द कन्दा मातु पिता सुखकारी।
जय निम्बदिवाकर ज्ञान प्रभाकर निम्ब क्वाथ आहारी।।
जय अरुण कुमारा अतिहिं उदारा पाखँड जग संहारी।
जय रविकर पुञ्जा अघतम भुञ्जा दण्डी भानु दिखारी।।
जय चक्र सुदर्शन दीनन रक्षन रसिकन सुख दातारी।
जय युगल उपासी विपिन विलासी रंगदेवी वपुधारी।।
जय कूर्म उधारी सरित मँझारी गोदावरी खिलारी।
जय करुणा सागर सदगुण आगर भूपर भक्ति प्रचारी।।
जय दीन दयाला परम कृपाला नैमिष मख रखवारी।
जय धर्म–प्रचारी भक्ति प्रसारी दीनन भव भयहारी।।
जय मुनि सुखदायक संतन नायक कीरति निज विस्तारी।
जय असुर विनाशन ऋषिजन राखन गंगा पावनकारी।।
जय कलिमल नाशन पालत दासन कीजै कलि निस्तारी।
जय श्री गुरुदेवा करूँ पद सेवा 'रासप्रिया' मन हारी।।

व्रतपंचक का तृतीय व्रत–

श्रीहरि चरणोदक एवं भगवत्प्रसाद व्रत

श्रीनिम्बार्काचार्यप्रभु–

सद्धर्ममार्गं भगवान्महत्तमो निर्मांय चाचार्यनिदानविग्रहः।
आदेशयामास सनत्कुमारतः सन्मार्गमूलं शरणं हरिं भजे।।

(औदुम्बरसंहिता – १५८४)

"महत्तम प्रभु श्रीराधाकृष्ण ने आचार्यविग्रह (हंसरूप) में प्रकट होकर सद्धर्म–मार्ग की स्थापना की और उसका श्रीसनत्कुमारों को समुपदेश दिया, सन्मार्ग के मूलभूत उन्हीं श्रीहरि का मैं भजन करता हूँ।" "जिन्होंने श्रीकृष्णोपदिष्ट सद्धर्म का सर्वत्र प्रचार किया, श्रीदेवर्षिवर्य को इस मार्ग में प्रवत्त किया, उन्हीं परमाचार्य श्रीसनकादिकों को मैं प्रणाम करता हूँ।" नैष्ठिकों के सिद्धान्त का परिबोध कर, उनके मत का विस्तार किया और स्वयं ने भी उसका परिपालन किया, उन्हीं गुरुदेव श्रीदेवर्षिवर्य का मैं अनुसरण करता हुआ श्रेष्ठ व्रतपञ्चक के तृतीय व्रत "चरणोदक एवं भगवत्प्रसाद" का एकनिष्ठ वैष्णव–भक्तों के हितार्थ परिवर्णन करूँगा–

भो श्रीनिवासानुग कृष्णपादभाग् भक्तानुकूलं विशदं सुखावहम्।
अंघ्रिप्रसाद–व्रतमञ्जसा शुभं वक्ष्यामि चाकर्णय शुद्धचेतसा।।

(श्रीऔदुम्बरसंहिता – १६४७)

हे निवासानुग! तुमको अंघ्रि–प्रसाद व्रत सरल रीति से बतला रहा हूँ, तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो।

यावन्न लभ्येत पदामृतादिकं कृष्णस्य नानातनुधारिणो हरेः।
तावन्न चान्यत् सलिलादिकं पिबेत् कृष्णांघ्रिपाथोव्रतमाचरन् ध्रुवम्।।

(श्रीऔदुम्बरसंहिता – १६४८)

समस्त वैष्णवजन के लिये शास्त्र का आदेश है – "जब तक अनेक अवतार धारण करने वाले सर्वेश्वर श्रीकृष्णप्रभु श्रीहरि का

चरणोदक पान न करले, तब तक इस व्रत का व्रती अन्य जल आदि का पान न करे।"

स्कन्दपुराण के वचन है–

पादोदकं शंखजलं विलोकितं कृष्णस्य विष्णोस्तुलसी विमिश्रितम्।
नैवेद्ययुक्तं च तथाऽन्यदर्पितं नीरं विनान्यन्न पिबेद्व्रती हि सः।।

(स्कन्दपुराण)

"तुलसी मिश्रित शंख के जल से सर्वेश्वर श्रीकृष्ण प्रभु को स्नान कराया हुआ चरणोदक और उनके भोग लगा हुआ नैवेद्य न मिलै तब तक इस व्रत का व्रती अन्य किसी के चढ़ा हुआ जल ग्रहण न करे।"

नारायणांघ्रिव्रतमेकचेतसा ये वै न कुर्वन्ति नरास्तु निष्फलाः।
तेषां हि लोकेषु सुखं न विद्यते कृष्णांघ्रिपाथः पिबतां विनाऽन्यतः।।

(स्कन्दपुराण)

"जो मनुष्य भगवच्चरणोदक पान का व्रत जब तक एकाग्रचित्त से नहीं अपनाते, तब तक उन्हें आनन्द नहीं मिलता। लोक में उनके सत्कर्म निष्फल हो जाते हैं।" ऐसा ही गरुड़पुराण का वाक्य है–

जलं न येषां तुलसीविमिश्रितं पादोदकं चक्रशिलासमुद्भवम्।
नित्यं त्रिसन्ध्यं प्लवते न गात्रं खगेन्द्र ते धर्मबहिष्कृता नराः।।

(गरुड़पुराण)

जिनके शरीर को तुलसी मिश्रित शालिग्राम भगवान् को स्नान कराया हुआ जल नित्य तीनों कालों में स्पर्श न करता हो, हे गरुड़ उन मनुष्यों को धर्म वहिष्कृत समझना चाहिये।

चान्द्रायणाच्चैव तथैव कृच्छ्रतो नानाविधाच्चापि महाव्रताद् दृढात्।
श्रीवासुदेवांघ्रिजलव्रतं द्विज मन्येऽधिकं कृष्णजनाश्रितं शुभम्।।
एवं मुकुन्दांघ्रिजलादिकं पिबन् नैव त्यजन् कृष्णबहिर्मुखं युवम्।
गोविन्दपादव्रतमुत्तमं ध्रुवं नित्यं प्रकुर्वीत विशेष–वैष्णवः।।

(स्कन्दपुराण)

'चांद्रायण' एक मास में पूर्ण होने वाला एक विशेष व्रत (इसमें कृष्णपक्ष में आहार प्रतिदिन एक ग्रास घटाना और शुक्लपक्ष में बढ़ाना होता है) कृच्छ्र– 'कृच्छ्रपराक' व्रत – १२ दिन का एक निराहार व्रत। 'कृच्छ्रातिकृच्छ्र' २१ दिनों का एक दुग्धाहार व्रत। तथा अन्य महाव्रतों से भी हे द्विज ! श्रीकृष्ण–प्रसाद–अंघ्रि व्रत वाले भक्तों को मैं विशिष्ट मानता हूँ। इस प्रकार चरणोदक–पान का व्रत विशिष्ट वैष्णव को अवश्य अंगीकार करना चाहिये।

भगवत्प्रसादी व्रत

व्रतपञ्चक के तृतीय व्रत 'अंघ्रि और प्रसादव्रत' में अंघ्रि–चरणोदकव्रत श्रवण किया। अब सभी वैष्णव 'भगवत्प्रसाद व्रत' की अनन्त महिमा का शास्त्रोक्त वर्णन दत्तचित्त होकर श्रवण करे–

कृष्णावशेषं न लभेत यावता तावत्तु भक्ष्यादिकमुद्धृतं यथा।
गोविन्दसंस्पर्श–विवर्जितं वसु वर्ज्यं त्यजन् कृष्णनिवेदितव्रतम्।।

(स्कन्दपुराण)

जब तक भगवत्प्रसादी न मिले, तब तक इस व्रतधारी को भगवत् अवशेष (प्रसादी) के अतिरिक्त अन्य पदार्थों का भक्षण नहीं करना चाहिये।

कुर्वीत विष्णोर विशेषवर्जितान्नाद्यादने वै प्रतिषेधनिंदनात्।
भीतश्च नानानरकार्णवार्दनाद्दामोदरोच्छिष्ट सुभोजनाग्रहः।।
कृष्णप्रसादव्यतिरिक्त–भक्षणे निषेध–निन्दानरकं तथेर्यते।।

(स्कन्दपुराण)

भगवत्प्रसादी के अतिरिक्त अन्नादि के भक्षण का निषेध तथा निन्दा की गयी है। ऐसा करने वाले को अनेक नरकों की यातना भोगनी पड़ती है। इसलिये भगवत्प्रसादी के भोजन का ही आग्रह शास्त्र में मिलता है। 'पद्मपुराण' में श्रीगौतमऋषि के वाक्य है–

अम्बरीष गृहे पक्वं यदभीष्टं सदात्मनः।
अनिवेद्य हरौ भुञ्जन् सप्तजन्मनि नारकी।।

(पादम गौतमः)

हे अम्बरीष ! घर में अपनी इच्छा के अनुसार बनवाये हुए पकवान्न यदि भगवान् के भोग लगाये बिना ही ग्रहण करता है, तो वह सात जन्मों तक नरक की दुःखद यातना को भोगता है।

अनिवेद्य प्रभुंजानः प्रायश्चित्ती भवेन्नरः।
तस्मात् सर्वं निवेद्यैव विष्णौ भुञ्जीत नान्यथा।।
पत्रं पुष्पं फलं तोयं अन्नपानाद्यमौषधम्।
अनिवेद्य न भुंजीत यदाहाराय क़ल्पितम्।।

(ब्रह्मांडपुराण)

श्रीसर्वेश्वरप्रभु के निवेदित किये बिना खाने–पीने से मनुष्य प्रायश्चिती हो जाता है। अतएव सब कुछ श्रीहरि के अर्पण करके ही अपने उपयोग में लेवै। पत्र, पुष्प, फल, दूध, अन्न आदि औषधी को भगवान् के अर्पण किये बिना उपयोग में न लेवै।

एवं कृष्णप्रसादान्य–भक्षणे दोषभीतिमान्।
कृष्णप्रसादमेवान्नं स्वीकुर्वाणो व्रती भवेत्।।

(पद्मपुराण)

इस प्रकार भगवत्प्रसादी से अन्य वस्तुओं को भक्षण करने वाला दोषी माना जाता है और भगवत्प्रसादी–श्रीराधाकृष्णप्रसादी अन्न सेवन करने वाला 'व्रती' कहलाता है।

अम्बरीष नवं वस्त्रं फलमन्नं रसादिकम्।
कृत्वा कृष्णोपभोग्यं हि सदा सेव्यं च वैष्णवैः।।

(पाद्मे गौतमः)

वैष्णवों को नवीन वस्त्र, फल, अन्न, रस आदि को भगवान् के अर्पित करके ही उनका सेवन करना चाहिये।

मुकुन्दाशनशेषं तु यो हि भुंक्ते दिने दिने।
सिक्थे सिक्थे भवेत्पुण्यं चान्द्रायणशताधिकम्।।

(ब्रह्माण्डे)

'श्रीब्रह्माण्डपुराण' में बतलाया है कि श्रीहरि की प्रसादी के एक एक ग्रास से सैकड़ों चान्द्रायण व्रतों से भी अधिक फल प्राप्त हो जाता है।

एवं कृष्णप्रसादान्नादन्यान्नं परिवर्जयन्।
कृष्णान्नमेव भुंजानः प्रसादव्रतमाचरेत्।।

(भविष्यपुराण)

"इस प्रकार भगवत्प्रसादी के अतिरिक्त अन्य अन्न का उपभोग न करे। प्रसादी पाने का व्रत ले लेवै।" अंघ्रि–प्रसादव्रत–निष्ठ के व्रत–संकल्प की रक्षा स्वयं श्रीराधासर्वेश्वर प्रभु ही करते हैं, जैसा कि 'भविष्यपुराण' में कहा है–

चरणसलिलमुख्यं राधिकाकृष्णभुक्तमशनवसनमुख्यं भुंजतां नित्यमेव।
स्वविधिकरवराणां राधिकाकृष्णदेवौ स्वपदसलिलशेषान्नव्रतं स्वं विधत्ताम्।।

(भविष्यपुराण)

जो सज्जन नित्य चरणोदक और भगवत्प्रसादी तथा प्रसादी वस्त्र आदि का उपभोग करते हैं, उन पर कृपा करके श्रीराधामाधव प्रभु स्वयं व्रत–पालन में सहायता देते हैं।

इत्येवं सूचितं स्वल्पं प्रसादान्नव्रतं शुभम्।
कुर्वन् सर्वव्रतफलं समाप्नुयात्प्रसादभुक्।।

(भविष्यपुराण)

संक्षेप में यही कहना है कि समस्त व्रतों का फल स्वल्प–सा भगवत्प्रसाद लेने से प्राप्त हो जाता है।

पादोदक–प्रसादान्नव्रतमेवं निरूपितम्।
श्रीनिवास विधिकर तवाग्रे मे समासतः।।

(औदुम्बर सं. १६७२)

हे निवास ! विधिपरायण ! संक्षेप में मैंने तुम्हें चरणोदक और प्रसादी–अन्न व्रत का निरूपण सुना दिया। अब आगे युग्माराधन–व्रत का वर्णन करेंगे।



व्रतपंचक का चतुर्थ व्रत–

श्रीयुग्माराधन–व्रत

व्रतपञ्चक में चतुर्थ व्रत है 'श्रीयुग्माराधन व्रत' अर्थात् युगलवर्य श्रीराधाकृष्ण की भेदरहित एकात्मभाव से आराधना करना। श्रीनिम्बार्कभगवान् निज शिष्य श्रीनिवासादिक अनुचरों को उपदेश करते हुए कहते हैं–

वक्ष्ये युगाराधनकं व्रतं शुभं भो श्रीनिवासानुग संनिशामय।
श्रीराधिकामाधवयोर्महामते स्वैतिह्यवर्यैरूपवर्णितं मया।।

(औदुम्बर सं. १६७६)

श्रीनिम्बार्काचार्यप्रभु– हे निवासानुग ! हे महामते ! हमारे पूर्वाचार्यों ने जैसा बतलाया है वैसा ही श्रीयुग्माराधन व्रत मैं तुम्हें सुनाता हूँ–

कल्लोलकौ वस्तुत एकरूपकौ राधामुकुन्दौ समभावभावितौ।
यद्वत् सुसंपृक्तनिजाकृती ध्रुवा–वाराधयामो व्रजवासिनौ सदा।।

(औदुम्बर सं. १६७७)

जिस प्रकार समुद्र की तरंगें एकरूप होती है, उसी प्रकार प्रेमामृत–रससिन्धुरूप श्रीराधामाधव वस्तुतः एक ही रूप हैं। जल और जल की दो तरंगें को देखने से ज्ञात हो जाता है कि सब जलरूप हैं, ठीक उसी प्रकार ये दोनों प्रेमामृत–रसरूप और तरंगरूप भी हैं। समभाव भावित अपनी–अपनी आकृति में ध्रुव अर्थात् शाश्वत–नित्य हैं। हम सब व्रजवासी सदा इन्हीं की आराधना करते हैं।

स्वयं श्रीकृष्णप्रभु की उक्ति है–

योऽहं स राधा किल राधिका तथा या साहमेवाद्यतमः सनातनः।
श्रीयुग्मभक्तिस्तु न लभ्यते यदा साहित्यतो नौ सततैकभावयोः।।
सत्कृर्ममात्रं क्वचिदाचरेत्तदा नो वै युगाराधनसद्व्रताग्रहः।
अत्रैकरूपं भजतां सुदुष्कृतां दोषावहत्वाद्धि सतोऽपि कर्मणः।।

(औदुम्बर सं. १६८२.१६८३)

"स्वयं श्रीकृष्णप्रभु के वचन है कि – मैं राधा हूँ और श्रीराधा मेरी ही आत्मा हैं। जब तक हम दोनों की निरन्तर एकभाव से साहित्य–संयोगभक्ति न प्राप्त हो, तब तक सत्कर्म–मात्र के आचरण करने वाले भी दोष के भागी कहे जाते हैं।" हमारे परमगुरु श्रीसनकादिकों ने भी यही भाव प्रकट किये हैं–

श्रीराधिकाकृष्णयुगं सनातनं नित्यैकरूपं विगमादिवर्जितम्।
यद्वज्जलोल्लोलयुगं मिथोरतं सद्गोचरं यावदवाप्नुयान्न तु।।
संसेवितुं तत्र न भेदमाचरेत् श्रीराधिकाकृष्णयुगार्चनव्रती।
दोषाकरत्वाद्धि भिदानुवर्तिनां सत्कर्मणामेवमभेद्यभेदिनाम्।।

(श्रीसनकादि)

"श्रीराधाकृष्ण युगल सनातन एवं नित्य एकरूप है। इसमें कभी भी वियोग नहीं होता। युगलार्चन का व्रती इनमें कभी भी लघु–दीर्घ का भेद–भाव न करे, भेद माननेवाले दोष के भागी होते हैं।"

हमारे पूज्य गुरुदेव श्रीदेवर्षिवर्य कहते हैं–

भजति यदि भिदामाचरंस्तत्र मूर्खो न भजनफलमाप्नोतीह दोषग्रहः स्यात्।
अत इह भिदया संसेवमानो मनीषी किमपि च करणीयं युग्मभक्तिव्रती स्यात्।।
श्रीराधाकृष्ण – युगलाराधन – व्रतमञ्जसा।
अनाचरन् विरोधी स्यादेकज्योतिर्विकल्पकृत्।।

(श्रीनारद)

यदि कोई मूर्ख भेदभाव रखकर इनका भजन करता है, तो उसे उस भजन का फल ही नहीं मिलता, उल्टा उसे पाप का फल मिलेगा। अतः युग्म–भक्ति का व्रत ही धारण करना चाहिये। इस व्रत का आचरण न करने वाला एवं एक ही ज्योति में विकल्प करने वाला इष्ट विरोधी समझा जाता है।

एवमादावकुर्वाणो युगलाराधन–व्रतम्।
विफलः पातकी ज्ञेयो राधाकृष्णबहिर्मुखः।।

(श्रीसनकादि)

इस प्रकार जो श्रीयुगल आराधन व्रत नहीं करता है, उस श्रीराधाकृष्ण विमुखी को पातकी माना गया है। उसके समस्त कर्म निष्फल हैं।

सम्पूज्या हरिणा सार्द्धं प्रेष्ठा कृष्णानपायिनी।
साक्षात्कृष्णमयी यत्र युगेज्याव्रतधारिणाम्।।

(ब्रह्मवैवर्ते)

अतः युग्माराधन व्रत वालों को श्रीकृष्ण के साथ श्रीराधाजी की पूजा करनी ही चाहिये। वे श्रीकृष्ण की अनपायनी प्रिया एवं उनकी आत्मा ही हैं। "निष्काम भाव के भक्तों के लिये भी युग्माराधन व्रत का ही विशेष माहात्म्य कहा गया है।

(ब्रह्मवैवर्तपुराण)

किञ्च सकाम ईहेत युगलाराधन-व्रतात्।
श्रीराधाकृष्णयोः पूजां तर्हि वांछितमश्नुयात्।।

(ब्रह्माण्डपुराण)

यदि कोई किसी कामना से युगलाराधन व्रत ग्रहण करे, तो श्रीराधाकृष्ण प्रभु की पूजा से उसकी समस्त कामनायें पूर्ण हो जाती है।

हमारे परमगुरु श्रीसनकादि महर्षियों ने श्रीयुगलोपासना के निगूढ़ तत्त्व को समझना नितान्त दुर्लभ बतलाया है, केवल श्रीयुगल-कृपाप्राप्त एकनिष्ठ जन ही इसे समझ सकते हैं।

सर्वेषां तु दुराराध्यं राधिकाकृष्णयोः शुभम्।
शुक्लरस-विवर्ज्यानां युगलाराधन-व्रतम्।।
युगलानुगृहीतानां युगलाराधन-व्रतम्।
श्रीराधाकृष्णयोर्ज्ञेयं परमैकान्तिनां सताम्।।
नान्येषां तु भवेदेव तथा मे निश्चिता मतिः।

(श्रीसनकादि)

उज्ज्वल-रस के उपासकों के बिना यह श्रीराधाकृष्ण का युगलाराधना व्रत सभी के लिये दुराराध्य (अत्यंत कठिन) है। जिन पर

श्रीयुगलकिशोर अनुग्रह करें, वे परम एकान्ती सन्तजन ही श्रीराधाकृष्ण के रहस्य को समझ सकते हैं। इतरजनों के बस की बात नहीं, ऐसी मेरी धारणा है।

इति सम्मोहयन्तीव योगिभिरपि नेयते।
आराध्या सह कृष्णेन राधा कृष्णमयी परा।।

(श्रीसनकादि)

योगियों को भी कभी–कभी बड़ा भारी मोह हो जाता है, अतः कृष्णमयी श्रीराधा की श्रीकृष्ण के साथ आराधना करनी ही चाहिये।

भो श्रीनिवासानुग वर्णितं मया चैवं विदित्वा युगसेवनव्रतम्।
सञ्चारयिष्यन् स्वजनेषु सर्वतस्त्वं धारयादौ ह्यनुवृत्तितः सताम्।।

(श्रीऔदुम्बर सं. १७२०)

हे निवासानुग – औदुम्बर ! मैंने 'युगसेवनव्रत' का वर्णन कर दिया, इसका स्वजनों में प्रचार और स्वयं भी इसका पालन करो।

कृष्णं सदैतिह्यनिदान–विग्रहं ह्याचार्यवर्यं च चतुःसनं स्वयम्।
श्रीनारदं स्वीयगुरुं नमामि च श्रीयुग्मकाराधन–सद्व्रतप्रदान्।।

(श्रीऔदुम्बर सं. १७२२)

श्रीयुगलाराधन व्रत के उपदेशक सत् ऐतिह्य अर्थात् सत्य पवित्र–परम्परा के मूल सर्वेश्वर श्रीकृष्ण (श्रीहंस) आचार्य, श्रीसनकादि तथा निजगुरुदेव श्रीनारदजी को पुनः पुनः प्रणाम करता हुआ, इस शुभव्रत का वर्णन पूर्ण करता हूँ।

श्रीऔदुम्बरऋषि–

एवं स्वशिष्याय निजानुवर्तिने यः श्रीनिवासानुगताय धीमते।
सत्सम्प्रदायानुसृतेः समागतं श्रीराधिकामाधवयोः स्वसेव्ययोः।।
प्रादात् प्रसिद्धं युगसेवनव्रतं नानाव्यवस्थान–विवेकसंयुतम्।
तं ह्यादिभूतं शरणं व्रजाम्यहं निम्बार्कमात्मीयगुरुं सुदर्शनम्।।

(श्रीऔदुम्बर सं. १७२३–१७२४)

हे परमपूज्य गुरुवर्य ! इस प्रकार निज अनुवर्ती श्रीनिवास से लघु स्वशिष्य मुझको कृपापूर्वक सभी प्रकार की व्यवस्था और विज्ञान के सहित श्रीसेव्य श्रीराधामाधव प्रभु का प्रसिद्ध युग्माराधन व्रत आपश्री ने प्रदान किया, हे सुदर्शनावतार निजगुरुदेव श्रीनिम्बार्कभगवान्! मैं आपकी शरण में हूँ।

श्रीनिम्बार्काचार्य-वन्दना

जय श्रीनिम्बारक जन उद्धारक ताप निवारक सुखद करं।
अति सुंदर वदनं शोभित रदनं जन सुख सदनं मधुर स्वरं।।
घनश्याम शरीरं विपदं धीरं मति स्थिरं प्रीति करं।
तुलसी गल मालं नयन विशालं उन्नत भालं कान्ति वरं।।
मन्द मधुर हसनं श्वेत सुवसनं निज वश रसनं चित्त हरं।
नव नीरद श्यामं अति अभिरामं पूर्ण निकामं ताप हरं।।
व्रज विपिन विलासं गिरि तट वासं सूर्य प्रकाशं तिमिर हरं।
अलकावलि गालं बाहु विशालं असुरन कालं भक्त वरं।।
पूरण मुख चन्दं आनँद कन्दं परमानन्दं सुखद हरं।
कन्ध उपवीतं दीनन मीतं परम विनीतं मुक्ति करं।।
अधरम भूभारं लखि महि भारं धर्म प्रचारं भक्ति करं।
ऋषि अरुण कुमारं भक्ति प्रचारं प्रगटे तारं दिव्य परं।।
जयंति कुमारं तत्व विचारं अतिहिं उदारं मान करं।
करुणा कर अयनं सदजित मयनं अम्बुज नयनं रम्यवरं।।
सँहिता आचारं विसद विचारं कर भव भारं धीर धीरं।
'रासप्रिया' शरणं कलिमल हरणं वारिधि तरणं चारु तरं।।

व्रतपंचक का पंचम व्रत–

सत्याङ्गहृद्–वाग–अविहिंसन व्रत

श्रीनिम्बार्काचार्यप्रभु– हे वैष्णवजन ! व्रतपञ्चक के चार व्रतों का वर्णन श्रवण करने के पश्चात् अब आप सभी पञ्चम व्रत का स्वरूप वर्णन श्रवण करें।

इस व्रत का शब्दिक अर्थ इस प्रकार है –

'सत्याङ्ग' सत्य अर्थात् यथार्थ–सिद्ध, 'अंग' अर्थात् स्वभाव–साधन। 'हृद्' आकृष्ट – मुग्ध करने वाले, 'वाक्' वचन–वाणी। 'अविहिंसन' अर्थात् किसी को क्षति–हानि न पहुँचाना। इनका संयुक्त अर्थ है– "सत्य–स्वभाव व्रतधारी को आकृष्ट–मुग्ध करने वाले एवं किसी को भी क्षति–हानि न पहुँचाने वाले सत्य वचन ही उच्चारण करने चाहिये।

तं श्रीनिवासानुगमात्म–शिष्यकं विज्ञानवैराग्यविशारदं ध्रुवम्।
निम्बार्क आचार्यवरो महामतिः प्रोवाच विज्ञाननिधिर्धुरन्धरः।।

(श्रीऔदुम्बर सं. १७२७)

पञ्चमव्रत का शाब्दिक स्वरूपबोध कराने के बाद ज्ञान–बैराग्य में विशारद अपने शिष्य श्रीऔदुम्बरऋषि को विज्ञान–निधि धुरन्धर आचार्यवर्य श्रीनिम्बार्कप्रभु ने कहा–

भो श्रीनिवासदासाथ शृणु सम्यक् समाहितः।
सत्यकायमनो भारत्यविहिंसनक–व्रतम्।।

(श्रीऔदुम्बर सं. १७२८)

हे श्रीनिवासदास ! समाहित होकर तुम मन वचन कर्म से सत्य का अविहिंसन–किसी को भी क्षति–हानि न पहुँचाने वाला व्रत सुनो।

सत्यव्रतं विधातुं तु सत्यस्यार्थो निरूप्यते।
सर्वथा भगवान् सत्यः कृष्णो भागवते तथा।।

(औदु. सं. १७२९)

सत्य-व्रत के विधानार्थ सत्य के अर्थ का निरूपण किया जाता है। सर्व प्रकार से देखा जाय तो एक भगवान् ही सत्य हैं, जैसा कि भागवत में कहा है-

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये।
सत्यस्य सत्यमृत-सत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः।।

(भागवत १०.२.२६.)

सत्यव्रत (संकल्प) वाले, सत्य (देव तथा प्राण) से परे, और भूत, भविष्यत् वर्तमान त्रिकालों में सत्य (वर्तमान) अथवा भक्त, भजन तथा भजनफल तीनों सत्य है। सत्य = प्राकृत लोकों के योनि उपादान कारण और अप्राकृत = दिव्यधाम में नित्य स्थित, प्रकृति, पुरुष, काल इन तीनों में भी सत्य (परमसत्य)। ऋत और सत्य अर्थात् मधुरवाणी और समदर्शन इन दोनों में भी सत्य। इस प्रकार समस्त दृष्टियों से सत्यस्वरूप श्रीसर्वेश्वर प्रभु के हम सब शरण हैं।

एवं सत्यात्मकं कृष्णं सर्वप्रपञ्चमूलकम्।
यावन्न सेवितुं शक्तो येन केनापि हेतुना।।
तावन्नान्यं भजेज्जातु सत्यव्रतं समाचरन्।
शाखादिरूपिणं देवं सत्यासत्यविवेकवान्।।

(औ. सं. १७३१ . १७३२)

इस प्रकार समस्त विश्व के मूल सत्यरूप सर्वेश्वर श्रीकृष्ण की सेवा में जब तक किसी कारण से आसक्ति न हो जाय, तब तक सत्यव्रत का आचरण करनेवाला शाखा प्रशाखारूप अन्य देवों की आराधना में आसक्ति न करे।

मिथ्यात्वादन्यसेवायाः शाखादिसेकवद् ध्रुवम्।
सर्वज्ञाः सत्यमाहुश्च यथार्थभाषणं तथा।।
यथार्थभाषणं सत्यं मौनं वागविसर्जनम्।
यथार्थभाषणं त्वेवं सत्यं वक्तुं न यावता।।

(औ. सं. १७३३ . १७३४)

जिस प्रकार मूल का सिंचन न करके जो व्यक्ति केवल शाखाओं के सिंचन से फल प्राप्त करना चाहें, उसी प्रकार सर्वेश्वर श्रीहरि को छोड़कर अन्य देवों की सेवा करना निरर्थक है। सर्वज्ञजन यथार्थभाषण को सत्य कहते हैं, वाणी के अविसर्जन (प्रश्न का उत्तर न देना) को मौन कहते हैं। ऐसे जब तक सत्य-यथार्थ बोलने की सामर्थ्य न हो तब तक असत्य नहीं बोलना चाहिये।

अवाप्नुयादवसरं तावत्सत्यव्रतं चरन्।
असत्यं नैव भाषेतासत्यस्यागतिदत्वतः।।
अत्रायमर्थ उन्नेयो असत्यभाषणस्य तु।
गुह्यानां सूनृतं मौनं अहमिति हरीरणात्।।

जब तक हो सके सत्य बोलने का ही व्रत धारण करे। असत्य न बोले, क्योंकि असत्य बोलने से दुर्गति होती है। असत्य न बोलने का तात्पर्य यह है- भगवान के वचन है कि "गुप्तचर साधनों में सूनृत (सत्य) और मौन मैं ही हूँ।"

वासुदेव-विभूतित्वात् सत्यव्रतत्वमुच्यते।
समानदर्शनं सत्यं प्राहुश्च सर्ववेदिनः।।

(औ. सं. १७३७)

सत्यव्रत वासुदेवप्रभु की ही विभूति है, सर्ववेत्ताओं ने सबमें समदृष्टि रखने को ही सत्य कहा है।

कहीं-कहीं पर असत्य की भी अनुज्ञा दी गयी हैं, जैसे 'भागवत' में कहा है – स्त्रियों के वार्तालाप विनोद, विवाह के निमित्त, वृत्ति (जीविका के लिये), प्राण संकट में हो तब, गो-ब्राह्मण हितार्थ और कहीं सत्य बोलने पर हिंसा होती हो, तो इन सब अवसरों पर झूठ बोलना निन्दनीय नहीं है। ऋषि याज्ञवल्क्य भी कहते हैं- 'वर्णिनां हि वधो यत्र तत्र साक्ष्यनृतं वदेत्।' अर्थात् यदि सत्य साक्ष्य से ब्रह्मचारियों का बध होता हो तो, वहाँ झूठ बोल सकता है। श्रुति भी कहती है-

तस्मात् काल एव दद्यात् कालेन दद्यात्।
तत्सत्यानृते मिथुनीकरोतीति चेत्तर्हि सत्यम्।।
असत्यस्य गुणाः श्रुत्याद्यैरनुज्ञानमेव च।
व्यवस्थयैव विहिताः सामान्यपुरुषान्प्रति।।
न सत्यव्रतिनं धीरं वलिमुख्यसमं प्रति।।

(श्रुतिः)

समय पर सत्य और असत्य का मेल होता है, यह ठीक है, किन्तु वह सब व्यवस्था सामान्य व्यक्तियों के लिये है असत्य के गुण बतलाकर की गई है। सत्यव्रत वाले धीर पुरुष के लिये बलि आदि की भाँति असत्य भाषण की आज्ञा कहीं भी नहीं है।

बलिर्न मोहितो यद्वदेतैः शुक्रानुवर्णितैः।
तथा मुह्येत नो धीरो सत्यानुज्ञानमुख्यकैः।।

(श्रुतिः)

शुक्राचार्य के कहने पर भी बलि मोहित नहीं हुआ। उसी प्रकार धीर व्रती को भी मोहित नहीं होना चाहिये। क्योंकि असत्य तो सभी स्थितियों में पाप ही समझा गया है। 'भागवत' में भी यह बात स्पष्ट है–

जो किसी को कोई वस्तु देने की कहकर यह कह देता है – मेरे पास कुछ भी देने को नहीं है, वह दुष्कीर्ति व्यक्ति जीवित होते हुए ही मृतक के सदृश है। पृथ्वी कहती है असत्य से बढ़कर कोई अधर्म नहीं है। मैं सबका भार सहन कर सकती हूँ, किन्तु झूठ बोलने वाले पापी का भार मुझसे सहा नहीं जाता। इस प्रकार सभी प्रकार के असत्यरूपी पाप से आत्मा की उपेक्षा (लोप) समझकर धीर व्यक्ति सत्यव्रत का आचरण करते हैं।

राधाकृष्णाववाप्नोति धीरः सत्यव्रताग्रहात्।
यावत्तु देहहृद्वाण्याऽहिंसनाचरणेऽक्षमः।।

तावन्नाङ्ग मनोवाग्भिहिंसनमात्रमाचरेत्।
कायहृद्वचनाहिंसाव्रतं समाचरन् नरः।।

(औ. सं. १७६१.६२)

सत्यव्रत की निष्ठावाला धीर व्यक्ति श्रीराधाकृष्ण की प्राप्ति कर लेता है। जब तक मन, वचन, काय से अहिंसन आचरण में सामर्थ्य न हो जाय, तब तक वह मन और वचन से हिंसन अर्थात् हिंसात्मक कोई भी आचरण न करे।

अविहिंसन व्रत की महिमा का वर्णन 'श्रीनारायण अनुशासन' में इस प्रकार किया है–

योऽगाद्यहिंसामयमुत्तमं व्रतं सन्धारयन्देहिषु नित्यदा नरः।
हृद्वाग्वपुर्जं दमनं त्यजेत्स वै धर्मं परं साधयते स वैष्णवः।।

वही उत्तम वैष्णव है जो नित्य, प्राणियों की अहिंसा रूप उत्तमव्रत को धारण करके मन वाणी और तन से किसी की भी आत्मा को कष्ट न पहुँचाने वाला परमधर्म की साधना करता हो। यही भाव श्रीसनकादिकों ने प्रकट किये हैं–

सद्धर्मं धारयेत् साक्षात्स वै भागवतोत्तमः।
त्रिधा हिंसां त्यजेद्विष्वक् योऽहिंसनव्रताग्रहात्।।

(श्रीसनकादि)

जो मन–वच–कर्म से होने वाली तीनों प्रकार की हिंसा को त्यागकर सद्धर्म की साधना करे वही उत्तम भागवत है। यही बात हमारे श्रीगुरुदेव ने कही है–

नैतादृशः परो धर्मो नृणां सद्धर्ममिच्छताम्।
न्यासो दण्डस्य भूतेषु मनोवाक्कायजस्य यः।।

(भागवतेनारदः)

जगत् के प्राणियों को मन–वचन–तन से दण्ड न देने से बढ़कर सद्धर्म चाहने वालों के लिये और कोई उत्तम धर्म नहीं है।

एवं विचारेण चरेत् सुवैष्णवः सत्याङ्गहृद्वागविहिंसन–व्रतम्।
राधामुकुन्दौ समवाप्नुयाद्यतः सत्सम्प्रदायानुविधान–कोविदः।।

(औदुम्बर सं. १७६६)

सत्सम्प्रदाय के विधान का विशेषज्ञ श्रेष्ठ वैष्णव इस प्रकार विचार करके मन–वचन–शरीर द्वारा अविहिंसन रूप सत्यव्रत का आचरण करे, जिससे उसे श्रीराधाकृष्ण प्रभु की प्राप्ति हो सके।

राधाकृष्णावहं वन्देऽविहिंसन–व्रतादृतौ।
ययोः कृपांशलेशेनाहिंसाव्रतं मयेरितम्।।

(औदुम्बर सं. १७७०)

जिनकी कृपालेश से मैने यह अहिंसा–व्रत बतलाया हैं, अविहिंसन व्रत से आदृत (सम्मानित) उन श्रीराधाकृष्ण प्रभु की मैं वन्दना करता हूँ।

इत्येवं श्रीनिवासानुग वर्णितं व्रतपञ्चकम्।
येन सन्धार्यमाणेन यथा कांक्षेत्तथा चरेत्।।

(औदु. सं. १७७१)

हे निवासानुग ! इस प्रकार से यह 'व्रत–पञ्चक' मैंने तुम्हें बतला दिया है। इसे समझकर अपनी प्रवत्ति के अनुसार इसका आचरण करो।

जयतो राधिकाकृष्णौ पञ्चव्रतफलात्मकौ।
अस्मत्सेव्यौ सदारूपौ वृन्दावने निजालये।।

(औदु. सं. १७७२)

निजधाम श्रीवृन्दावन में नित्य स्थित 'पञ्चव्रत' फलात्मक (पंचव्रत के फलरूप) हमारे सेव्य सर्वेश्वर श्रीराधाकृष्ण प्रभु की जय हो।



पवित्रामाल–धारण विधि

श्रीनिम्बार्कप्रभु के शिष्य श्रीऔदुम्बर ऋषि ने श्रावण मास में श्रीसर्वेश्वर प्रभु को पवित्रामाल धारण कराने की महिमा एवं पवित्रा बनाने की विधि का शास्त्र वचनानुसार वर्णन 'औदुम्बरसंहिता' में श्लोक ६६६ से १०१६ तक सविस्तार किया है, जिसका संक्षिप्त उल्लेख इस प्रकार है–

श्रीसनत्कुमारों के वचन है कि–"बुधजन श्रावण में भगवान् को पवित्रा धारण करावें, उससे वर्षभर की पूजा पूर्ण होती है।"

श्रीनारदजी कहते हैं कि–"श्रावण शुक्ला द्वादशी को वैष्णव नर–नारियों द्वारा श्रीकृष्ण को पवित्रा धारण कराना चाहिये।"

विष्णुरहस्य में भी कहा है–"भगवान् के पवित्रा धारण कराने से भुक्ति और मुक्ति दोनों प्राप्त हो जाते हैं, इससे नर–नारियों की कीर्ति, पुण्य, सुख–सम्पदा एवं धन की वृद्धि होती है। वैष्णव पवित्रा धारण उत्सव अवश्य करें। इससे समस्त फलों की प्राप्ति होती है, यश और कीर्ति बढ़ती है।"

पवित्रारोपणं विष्णोः कर्त्तव्यं श्रावणे बुधैः।
सम्पूर्णा जायते तस्मात्पूजा सांवत्सरीकृता।।

(श्रीसनकादि)

द्वादश्यां श्रावणे मासि सिते पक्षे पवित्रकम्।
श्रीकृष्णाय प्रदातव्यं वैष्णवीभिश्च वैष्णवैः।।

(श्रीनारदजी)

पवित्रारोपणं विष्णोर्भुक्ति–मुक्तिप्रदायकम्।
स्त्रीपुंकीर्तिप्रदं पुण्यं सुखसम्पद्धनावहम्।।

(श्रीविष्णुरहस्य)

पवित्रा बनाने की विधि—

"सोना या चाँदी अथवा कमल के तन्तु, ऊन, रेशम या सूत के धागों का अपनी रुचि के अनुसार पवित्रा बनावे।"

"वैष्णवी स्त्री द्वारा काते हुए सूत को तेहरा करके उसका संस्कार करे।"

"कवच-मंत्र से, पंचगव्य से एवं जल से स्नान करायें। फिर १०८ बार श्रीकृष्ण-मंत्र का जप करे और फिर श्रीकृष्ण-गायत्री से शंखोदक से प्रोक्षण (छिड़काव) करायें। श्रीकृष्ण-गायत्री मन्त्र इस प्रकार है-"नन्दपुत्राय विद्महे राधाप्रियाय धीमही तन्नः कृष्णः प्रचोदयात्।" फिर सूत को सुखाकर पवित्रा बनायें।"

"श्रीकृष्ण के जानु (घुटना), जंघा, नाभि इन तीनों नापों के अनुसार १०८ सूत के तीन प्रकार के पवित्रा बन सकते हैं।"

"चौवन सूत का मध्यम और सत्ताईस सूत का पवित्रा कनिष्ठ माना जाता है। वर्ष दिन ३६० का अथवा उनके आधे १८० या उनके भी आधे ६० सुत्रों का भी पवित्रा यथासम्भव बन सकता है। इनमें पहले में छत्तीस, मध्यवाले में चौबीस और कनिष्ठ (तीसरे) में बारह ग्रन्थियाँ लगाने का विधान है। अर्थात् कनिष्ठा से मध्यम में दुगुनी और उत्तम में तिगुनी ग्रन्थी लगावे। चौथा पवित्रा मुकुट से लेकर चरणकमलों तक जो लम्बा होता है, उसको वनमाला भी कहते हैं। उसमें एक हजार ग्रन्थियाँ होनी चाहिए। बुधजन एकसौ आठ ग्रन्थियाँ भी लगाते हैं।"

"साधारण पवित्रा तो तीन सूत्रों का ही बन जाता है। उसमें चारों ओर जो वरावर हो ऐसी सुन्दर ग्रन्थी लगा दें। ऐसी श्रीसनकादिकों की आज्ञा है।"

"गन्थियाँ लगावे, वे मनोहर गोल-गोल हों। विषम संख्या वाली न हो।"

"केशर अगर गोरोचन आदि से उसे रँग देवे। वस्त्र से ढंककर बाँस के पटल में रख लेवे।"

पवित्रा अधिवासन–

"अधिवासन की विधि इस प्रकार है–एकादशी के दिन सायंकाल स्नान करके भगवान् का महाभिषेक करे, फिर वृहद् भोग धरे। वैष्णवों को बुलाकर मन्दिर को ध्वज–पताका आदि से सजावे। सर्वतोमण्डल लिखे, समस्त सामग्री श्रीराधाकृष्ण के आगे रख देवे।"

"फिर दण्ड की भाँति चरणों में गिरकर प्रणाम करे। अनेक प्रकार के स्तोत्रों का पाठ करे। इस प्रकार महाविभूतियों से श्रीराधाकृष्ण की पूजा करे।"

"फिर श्रीगुरुदेव को नमन कर, पवित्रा का पूजन करे। सर्वतोमण्डल पर कलश रखें। फिर पवित्रा का आवाहन करे–"वार्षिक याग को पवित्र करने के लिए, हे पवित्रक ! आप नित्यलोक से पधारिये। आपको नमस्कार है।"विधिपूर्वक श्रीराधाकृष्ण की पूजा करे, गंध, अक्षत् पुष्प धूप दीप नैवेद्य श्रीयुगल के और पवित्रा के भी चढ़ावे। फिर ठाकुर जी के करकमल में एक वीता (वितास्ति) का डोरा बाँधे। स्तुति करे–'हे प्रभो श्रीकिशोरी जी सहित मैं आपको आमन्त्रित करता हूँ। प्रातःकाल आपकी पूजा करूँगा, आप अवश्य उपस्थित होवें, आपको नमन है।"

"इस प्रकार श्रीराधाकृष्ण को प्रणाम करके पवित्रा का अस्त्रमन्त्र से रक्षण, कवचमन्त्र से अवगुण्ठन तथा चक्रमन्त्र एवं नृसिंह बीज से रक्षण करे।" यह अधिवासन विधि है।

"फिर अग्रिम दिन (द्वादशी) प्रातःकाल उठ करके स्नानादि से निवृत्त होकर ठाकुरजी की नित्य–सेवा के बाद पूजे हुए पवित्रा को मन्त्रोच्चारण–पूर्वक श्रीराधाकृष्ण के अर्पण करे।"

"पवित्रा धारण कराते समय इस प्रकार प्रार्थना करे–वार्षिक पूजा के फल के प्रदाता हे श्रीराधाकृष्ण ! आपको प्रणाम है, इस पवित्रा को स्वीकार करिये।"

"श्रीगुरुदेव एवं अन्य वैष्णवों को भी पवित्रा पहनावे फिर वैष्णवों के साथ महाप्रसाद ग्रहण करे। श्रीठाकुरजी को एक मास, एक पक्ष, तीन दिन अथवा एक ही रात–दिन पवित्रा धारण कराये रहें। परन्तु अभिषेक के समय पवित्रा उतार लें। श्रृंगार के समय पुनः धारण करादें।"

पद

सर्वेश्वर की जय जय जय हो,
जिन महिमा परम अपार है।
सनकादिक परिसेवित हैं,
परिविदित सकल संसार है।
गुण गावो प्रतिपल श्रीप्रभु का,
नर जीवन यह रस–सार है।
ध्रुव–सुख पावो अनुपम सुन्दर,
अन्त भवाम्बुधि निस्तार है।।
अविरल सर्वेश्वर को रटहि,
बहहि सदा हिय रस–धार है।
राधा – सर्वेश्वर – शरणागत,
तब सकल तपन–परिहार है।।

–जगद्‌गुरु श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी

कार्तिक मासोपवास

व्रतपञ्चक का उपदेश करने के अनन्तर श्रीनिम्बार्कप्रभु से श्रीऔदुम्बर ऋषि 'मासोपवास' के स्वरूप निरूपण हेतु अनुरोध करते हैं –

श्रीऔदुम्बरऋषि– हे सद्धर्म संरक्षक सद्‌गुरुदेव ! आपश्री ने व्रतपञ्चक के प्रथम व्रत में पाक्षिक एकादशी एवं वार्षिक भगवतज्जयंती–व्रत–महोत्सव का उपेदश कर हमें उपकृत किया। ऐसे ही आपश्री के मुखारविन्द से 'मासोपवास–व्रत' का सम्पूर्ण विधान श्रवण करने की हमारी प्रबल उत्कण्ठा है। कृपापूर्वक आप हमें इसका उपदेश करें।

श्रीनिम्बार्काचार्य– हे व्रतनिष्ठ औदुम्बर ! ऐसी ही जिज्ञासा हमारे गुरुदेव श्रीदेवर्षिजी ने श्रीब्रह्माजी के समक्ष प्रकट की थी। तब पितामह ने प्राणियों के पुण्यार्थ जो परमश्रेष्ठ साधन का उपदेश किया था, वही मैं तुम्हें बतलाता हूँ–

समस्त व्रतों में मासोपवास–व्रत श्रेष्ठ है। जो फल समस्त तीर्थ, व्रत से प्राप्त होता है, वह मासोपवास से प्राप्त हो जाता है। जिसने विधिवत् यह व्रत किया हो, उसने समझ लो जप, तप, यज्ञ, दान सब कुछ कर लिया। व्रतधारी का कर्तव्य है कि वह सर्वप्रथम सत्सम्प्रदायी सद्‌गुरु से वैष्णवी–दीक्षा ग्रहण करे और श्रीसर्वेश्वरप्रभु की सेवा–अर्चना में तत्पर हो जाय। तत्पश्चात् श्रीगुरुदेव की अनुज्ञा लेकर 'मासोपवास' प्रारम्भ करे। आश्विन शुक्ला एकादशी को उपवास करके स्वसम्प्रदाय की रीति से एक महिने के लिये व्रत का संकल्प करे और सम्पूर्ण कार्तिक माह तक श्रीहरि की आराधना करे।

ह्रीवेर (एक गंधद्रव्य), मालती, कमलपुष्प, कपूर–चन्दन अर्पण करके धूप–दीप–नैवेद्य द्वारा मन वचन कर्म से प्रभु की पूजा–अर्चना करे। त्रिकाल स्नान और जितेन्द्रियता–पूर्वक अहर्निश भगवान् के

नामों का ही उच्चारण करता रहे। आसन पर बैठा अथवा लेटा हुआ भी भगवान् का ही नाम–संकीर्तन– "राधेकृष्ण राधेकृष्ण कृष्ण कृष्ण राधे राधे। राधेश्याम राधेश्याम श्याम श्याम राधे राधे।।" करता रहे। अन्न, रूप, गन्ध आदि सांसारिक विषयों की स्मृति भी न करे। झूँठ न बोले, हिंसा न करे, दया रखे। शान्तवृत्ति से अपने आराध्यदेव की स्तुति करता रहे। देशकाल के अनुसार श्रीराधाकृष्ण की अनुवृत्ति (निरतंर स्मृति) के लिये साधक को विधिवत् तीस दिवस का यह व्रत अवश्य ही करना चाहिये।

'पद्मपुराण' के कार्तिक माहात्म्य में मथुरा–मण्डल में रहकर श्रीराधाकृष्ण के पूजन करने का विशेष महत्व बतलाया है। मथुरा में रहकर जो एक वार भी पूजा कर लेता है तो चाहे वह मन्त्र, द्रव्य, विधिविहिन भी क्यों न हो श्रीहरि उससे विशेष प्रसन्न होते हैं। उसे यज्ञ तथा अन्यान्य तीर्थों में भ्रमण की आवश्यकता नहीं। मथुरा से अधिक महत्व 'श्रीराधाकुण्ड' का है–

राधादामोदरसेवा पाद्मे स्नानादिकं तथा।
यथा राधा प्रिया विष्णोस्तस्याः कुण्डं प्रियं यथा।।

(पद्मपुराण)

कार्तिक में श्रीराधाकुण्ड के स्नान और उस पर श्रीराधादामोदर प्रभु की सेवा–पूजा का पद्मपुराण में विशेष महत्व बतलाया है।

कार्तिके बहुलाष्टम्यां तत्र स्नात्वा हरेः प्रियः।
एवंम्प्रभृतौ कृत्यं तु व्यवस्थाप्य विशेषतः।।

(पद्मपुराण)

कार्तिक की बहुलाष्टमी को श्रीराधाकुण्ड में स्नान करके विशेष आराधना करने वाले पर प्रभु कृपा करते हैं।

कार्तिक कृष्णा अमावस (दीपोत्सव) के दिन निशान्त काल में नित्य कृत्य से निवृत्त होकर हाथों को सुगंधित द्रव्यों से लिप्त करके प्रार्थना–पूर्वक 'श्रीराधिकोत्थापन' अर्थात् श्रीराधाजी को जगाये। कार्तिक शु. प्रबोधिनि एकादशी के दिन प्रभु श्रीकृष्ण प्रबुद्ध अर्थात् जाग्रत् होते

हैं। इससे द्वादश दिन पहले श्रीराधाजी प्रबुद्ध हो जाती हैं–

प्रार्थनापूर्वकं शनैः राधां देवीं प्रबोधयेत्।
द्वादशाहं हरेः पूर्वं राधाप्रबोधनं मतम्।।

(पद्मपुराण)

श्रीराधाजी को जगाने के समय इस प्रकार प्रार्थना करे–

उत्तिष्ठो त्तिष्ठ राधिके त्यज निद्रां प्रियोत्तमे।
रासेश्वरि ! महारम्ये ! श्रीदामोदर–वल्लभे !

(पद्मपुराण)

"हे श्री रासेश्वरीजू ! हे महामनोहारी जू ! हे दामोदर वल्लभे ! निद्रा त्यागकर उठिये।" जागने पर मुख प्रक्षालन के लिये सुगंधित जलादि और समयोचित भोग वस्तु अर्पण करे। झीने कोमल वस्त्र से मुख का मार्जन करे। भावना द्वारा श्रीराधाजी का निर्देश प्राप्त करके श्रीकृष्णप्रभु के सुकोमल श्रीअंगों का शनैः शनैः मर्दन करके जगाये और ऐतिह्य अर्थात् स्वसम्प्रदाय की रीति के अनुसार श्रीराधाकृष्ण की सेवा–पूजा करे। इस प्रकार प्रातःकाल श्रीराधाकृष्ण की मंगल–सेवा करे।

(पद्मपुराण)

कार्तिक माह की रात्रि के अन्त में श्रीराधाकृष्ण के स्तव का जो गायन करता है उसे दिव्यधाम की प्राप्ति होती है। वह 'श्रीराधास्तव' ब्रह्माण्डपुराण में इस प्रकार है–

श्रीराधायै नमः, नारद उवाच–

किं तद् गुह्यतरं ब्रह्मन् यश्चिन्त्यमखिलेश्वरैः।
तन्मे ब्रूहि सुतत्त्वज्ञ योगेश मयि वत्सल।।

ब्रह्मोवाच–

शृणु गुह्यतमं तात नारायणमुखाच्छ्रुतम्।
सर्वैरापूजिता देवै राधा वृन्दावने वने।।

(ब्रह्माण्डपुराण)

राधाविश्लेषतः कृष्णो ह्येकदा प्रेमविह्वलः।
राधामन्त्रं जपन् ध्यायन् राधां सर्वत्र पश्यति।।

श्रीराधाजी को नमस्कार करके हमारे गुरुदेव श्रीदेवर्षिजी ने श्रीब्रह्माजी से पूछा – हे ब्रह्मन् ! जो अखिलेश्वरों द्वारा चिन्तन किया जाता है, वह श्रीराधास्तव मुझको कृपया बतलाइये। श्रीब्रह्माजी ने कहा– हे तात ! मैंने श्रीनारायण प्रभु के मुख से यह निगूढ़तम स्तव श्रवण किया है। सभी देवो को श्रीधाम वृन्दावन में वृन्दावनेश्वरी श्रीराधाजी की आराधना करना उचित है।

एक समय श्रीराधाजी के वियोग में प्रेम–विह्वल श्रीकृष्ण राधामन्त्र को जपते हुए सर्वत्र श्रीराधा ही राधा का अनुभव करने लगे–

श्रीराधा - स्तव

गृहे राधा वने राधा पृष्ठे राधा पुरः स्थिता।
यत्र–यत्र स्थिता राधा राधैवाराध्यते मया।।१।।
जिह्वा राधा स्तुतौ राधा नेत्रे राधा हृदि स्थिता।
सर्वाङ्गव्यापिनी राधा राधैवाराध्यते मया।।२।।
पूजा राधा जपे राधा राधिकायाभिवन्दने।
श्रुतौ राधा शिरो राधा राधैवाराध्यते मया।।३।।
गाने राधा गुणे राधा राधिका भोजने गतौ।
रात्रौ राधा दिवा राधा राधैवाराध्यते मया।।४।।
माधुर्ये मधुरा राधा महत्वे राधिका गुरुः।
सौन्दर्ये सुन्दरी राधा राधैवाराध्यते मया।।५।।
राधा पद्मानना पद्मा पद्मोद्भवसमुद्भवा।
पाद्मे विवेचिता राधा राधैवाराध्यते मया।।६।।
राधा कृष्णात्मिका नित्यं कृष्णो राधात्मिको ध्रुवम्।
वृन्दावनेश्वरी राधा राधैवाराध्यते मया।।७।।
जिह्वाग्रे राधिकानाम नेत्राग्रे राधिकातनुः।
कृष्णहार्दपरा राधा राधैवाराध्यते मया।।८।।

कर्णाग्रे राधिकाकीर्तिर्मनोऽग्रे राधिका मनुः।
कृष्ण-प्रेममयी राधा राधैवाराध्यते मया।।६।।
राधा राससुधासिन्धु राधा सौभाग्यमञ्जरी।
राधा व्रजाङ्गनामुख्या राधैवाराध्यते मया।।१०।।
कृष्णेन पठितं स्तोत्रं श्रीराधाप्रीतये परम्।
यः पठेत् प्रयतो नित्यं राधाकृष्णप्रियो भवेत्।।११।।

।। इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे श्रीकृष्णोक्तः श्रीराधास्तवः सम्पूर्णम्।।

श्रीराधाभावावेश में श्रीकृष्ण कहते हैं–

श्रीधाम में, वन में आगे–पीछे, जहाँ–तहाँ सर्वत्र श्रीराधा ही राधा दृष्टिगोचर हो रही है। उन्हीं श्रीराधा की मैं उपासना करता हूँ।।१।।

जिह्वा, नेत्र, हृदय आदि मेरे सभी अंगों में श्रीराधा व्याप्त हैं, मैं उन्हीं की आराधना करता हूँ।।२।।

मेरे कर्ण और मस्तक पर भी श्रीराधा विराज रही हैं। मैं उन्हीं की पूजा–वन्दना करता हूँ।।३।।

गाते समय, भोजन करते तथा चलते–फिरते समय, रात और दिन सर्वदा मैं राधा की ही आराधना करता हूँ।।४।।

जो श्रीराधा मधुरता में मधुर, महत्ता में गुरु और सुन्दरता में सुन्दर हैं। उन्हीं की मैं आराधना करता हूँ।।५।।

पद्मानना (कमलमुखी), ब्रह्मा की जननी, उन्हीं श्रीराधा की मैं आराधना करता हूँ।।६।।

श्रीराधा मेरी आत्मा है और मैं नित्य श्रीराधा की आत्मा हूँ यह ध्रुव है, उन्हीं वृन्दावनेश्वरी श्रीराधा की मैं आराधना करता हूँ।।७।।

मेरी रसना पर सदा श्रीराधा का नाम और नयनों के समक्ष श्रीराधा की मूर्ति रहती है। श्रीराधा मेरा हृदय है, मैं उन्हीं राधा की आराधना करता हूँ।।८।।

श्रीराधा प्रेममयी हैं। मेरे कर्णों में उनकी कलित कीर्ति के शब्द और मन में श्रीराधाका मन्त्र रहता है, उन्हीं राधा की मैं आराधना करता हूँ।।६।।

रास रूपी अमृत की समुद्र, सौभाग्य मञ्जरी एवं व्रजाङ्गनाओं में मुख्य श्रीराधा की मैं आराधना करता हूँ।।१०।।

श्रीकृष्ण द्वारा पठित (जपा हुआ, रटा हुआ) इस स्तोत्र के पठन से श्रीराधाजी अत्यंत प्रसन्न होती है। जो इसका नित्य पाठ करता है, वह श्रीराधाकृष्ण का प्रिय हो जाता है।

।। ब्रह्माण्डपुराण के श्रीब्रह्मानारद संवाद का श्रीकृष्ण कथित श्रीराधास्तव संपूर्ण।।

इस प्रकार कार्तिक कृष्णा बहुलाष्टमी को श्रीराधाकुण्ड में स्नान करके श्रीराधाकृष्ण की विधिवत पूजा करे। श्रीराधास्तव, श्रीराधाकृपाकटाक्ष स्तोत्र एवं श्रीराधाष्टक का पाठ करे। नैवेद्य–भोग लगाकर उत्सव करे।

कार्तिक कृष्णा श्रीगुरु द्वादशी

श्रीगुरुद्वादशीकृत्यं कर्त्तव्यं कार्तिके सताम्।
द्वादश्यां कृष्णपक्षस्य पारम्पर्यान् गुरुन् स्वयम्।।१।।
उद्दिश्य कार्तिके चेष्टिं वैष्णवीं कारयेत्सुधीः।
कृष्णादिनिजपर्यन्तं संख्याकांस्तु विशेषतः।।२।।
'निम्बग्रामे' महान्तस्तद्धियेज्याः स्वैर्यथाबलम्।
संपूजितांस्तु सूचयेद् गुरुणां चरितं क्रमात्।।३।।

(पद्मपुराण)

कार्तिक कृष्णा द्वादशी 'श्री गुरु द्वादशी' है। उस दिन परम्परागत गुरुओं का पूजन करे।।१।।

कार्तिक में वैष्णव–याग (आचार्य आविर्भाव–तिरोभाव महोत्सव) करना चाहिये। श्रीकृष्ण (श्रीहंसभगवान्) से लेकर निज गुरुदेव पर्यन्त सभी आचार्यों का पूजन करना चाहिये।।२।।

निम्बग्राम (श्रीगोवर्धन) में यथाशक्ति आचार्य–महोत्सव मनाये। आचार्य–पूजन और आचार्य–चरित की कथा करें।।३।।

आविर्भाव–तिरोधानं ज्ञात्वा तु तद्दिने दिने।
गुरूणां कारयेदिष्टिं कार्तिके यस्तु वैष्णवीम्।।

श्रीआचार्य गुरुदेवों के आविर्भाव और तिरोभाव दिवसों को जानकर उन दिनों में कार्तिक में आचार्य महोत्सवरूप वैष्णव–यज्ञ करना चाहिये। कृष्णपक्ष की द्वादशी को जितने भी वैष्णव हो उनका भी गुरु–बुद्धि से भगवत्प्रसाद प्रदान कर सत्कार करे।

कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी–

मुख्यस्थान–विभावेन गुरुभक्ति–परायणैः।
अथ कृष्णत्रयोदश्यां श्रीमत्योः कृष्णराधयोः।।

(सांख्यायने)

गुरुभक्त वैष्णव मुख्य स्थान (श्रीवृन्दावन) की भावना से अथ कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी को श्रीराधाकृष्ण प्रभु की सेवा करें। संध्याकाल में घृत का दीपक जलायें।

कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी–

कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी को प्रातःकाल उठकर घर में स्नान करने के बाद तीर्थस्थल में कार्तिक स्नान करें।

कुमारीवटुकान् भोज्यं तथैव च तपोधनान्।
राजसूयफलं तेन प्राप्यते नात्र संशयः।।

(पद्मपुराण)

इस तिथि में कुमारी कन्या और तपस्वी ब्रह्मचारियों को भोजन प्रसाद कराने से राजसूय यज्ञ के समान फल प्राप्त होता है, इसमें संदेह नहीं।

कार्तिक अमावस्या–

अमावस्या को संध्या के समय लक्ष्मीपूजन करके श्रीराधाजी को जगाना चाहिये।

> श्रीराधाकृष्णयोरग्रे कृत्वा दीपादिचोत्सवम्।
> रात्रौ विधापयेत्ततः प्रातःकाले प्रतिपदे।।
> गोवर्द्धनं च गोविन्दं पूजयेद् गाश्च भूषयेत्।।

(पद्मपुराण)

श्रीराधाकृष्ण के समक्ष रात्रि में दीपोत्सव करके प्रातःकाल प्रतिपदा को श्रीगोवर्द्धन, श्रीगोविन्द और गायों का पूजन करें। फिर गायों को ग्रास देकर के नमन करे। यदि द्रव्य हो तो, श्रीकृष्ण को प्रसन्न करने वाले वृहद् अन्नकूट की सामग्री गोवर्धन रूप श्रीकृष्णप्रभु को अर्पित करे। मथुरा या व्रज से बाहर जहाँ–तहाँ गाय के गोबर का गोवर्धन बनाकर नाना प्रकार के व्यञ्जनों से पूजा करे। मथुरा–वृन्दावन अथवा गोवर्धन में पूजा और प्रदक्षिणा करने वालों को असाध्य भगवद्धाम में श्रीहरि की सन्निधि प्राप्त हो जाती है।

यम–द्वितीया–

> स्नातव्यं तु यमुनायां यमलोकनिवृत्तये।
> प्रातर्यमद्वितीयायां शुक्लपक्षस्य कार्तिके।।
> स्वलोकालोकवरेण तोषितायां यमेन वा।
> स्नेहेन भगिनीहस्ताद्भोक्तव्यं पुष्टिवर्द्धनम्।।

(स्मृति)

यमलोक की निवृत्ति के लिये कार्तिक शु. यमद्वितीया को प्रातःकाल यम द्वारा सन्तुष्ट की हुई श्रीयमुना में स्नान करे और बहिन के हाथ का भोजनप्रसाद ग्रहण करे। बहिनों को विधानपूर्वक दान देवें।

गोपाष्टमी–

"कार्तिक शु. अष्टमी को श्रीकृष्णप्रभु गोचारण हेतु गोप बने थे। अतः इसे गोप अष्टमी कहते हैं। उस दिन गायों का पूजन करे,

गो-ग्रास देवें, गायों की परिक्रमा करें, गायों के पीछे-पीछे चलें।"

(पद्मपुराण)

"सज्जनों को चाहिये कि गोपाष्टमी महोत्सव करें - विशेष नन्दगाँव तथा अन्यत्र भी करें। उत्तम संतों को बुलायें। श्रीबलराम-कृष्ण, नन्द-यशोदाजी और गोपों का स्वरूप धारण करके श्रीनन्दजी की आज्ञा से गोचारण लीला करें। यशोदाजी उन्हें भक्ष्य-भोज्यादि चारों प्रकार के अन्नादि देवें। गोचारण कर सायंकाल लौटे। प्रसाद आदि से वैष्णवों का सत्कार करके उत्सव की समाप्ति करें।

(स्मृतौ)

अक्षय नवमी -

सम्प्रदाय प्रवर्तक परमाचार्य श्रीहंसभगवान् जयन्ती एवं श्रीसर्वेश्वर प्रभु प्राकट्य तथा श्रीसनकादिकों का हर्षोल्लास के साथ महोत्सव करें। परम्परागत विधान के अनुसार पञ्चाभिषेक, पूजन-अर्चन एवं उपवास करे।

देवप्रबोधिनी एकादशी -

श्रीब्रह्माजी ने कहा - हे देवर्षिवर्य ! प्रबोधिनी एकादशी पुण्यवर्द्धक और पापों को नष्ट करने वाली है। गंगा, समुद्र, सरोवर आदि तीर्थों के महत्त्व से भी देवप्रबोधिनी की महिमा अधिक है। हजारों अश्वमेध और सैकड़ों राजसूय यज्ञों का फल एक देवोत्थापन के व्रत मात्र से प्राप्त हो जाता है। जो देव-दानवों एवं मानवों को दुष्प्राप्य-दुर्लभ है, वह देवप्रबोधिनी बिना ही माँगे दे देती हैं। मेरु और मन्दराचल पर्वतों जैसे विशाल पाप भी यह एक एकादशी के उपवास से भस्म हो जाते हैं। हजारों जन्मों के पाप भी देवप्रबोधिनी के जागरण से अग्नि से रुई की भाँति जल जाते हैं।

देवप्रबोधिनी का विधान इस प्रकार है-

रात्रि में स्नानादि करके भगवान् का अभिषेक कर महानैवेद्य अर्पित करे। फिर नृत्य-गान करें, विविध वाद्य बजावें, वेद-मन्त्रों से

मंगल गायन करें। श्रीराधाकृष्ण युगलनाम-महामन्त्र का संकीर्तन करें।

श्रीसर्वेश्वरप्रभु को जगाते समय इस प्रकार प्रार्थना-मन्त्र का उच्चारण करे-

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द त्यज निद्रां जगत्पते।
त्वया चोत्थीयमानेन उत्थितं भुवनत्रयम्।।

(श्रुतौ मंत्रः)

"हे गोविन्द ! निद्रा त्यागकर उठिये। आपके उठने पर तीनों भुवन जाग्रत होंगे।"

ब्रह्मेन्द्ररुद्राग्निकुबेरसूर्य-सोमादिभिर्वन्दित-वन्दनीयः।
बुध्यस्व देवेश जगन्निवास मन्त्र प्रभावेन सुखेन देव।।१।।
इयं तु द्वादशी देव प्रबोधार्थं हि निर्मिता।
त्वयैव सर्वलोकानां हितार्थं शेषशायिना।।२।।
सुप्ते त्वयि जगन्नाथे जगत्सुप्तं भवेदिदम्।
उत्थिते चेष्टते सर्वमुत्तिष्ठोत्तिष्ठ माधव।।३।।
गता मेघा वियच्चैव निर्मलं विमला दिशः।
शारदानि च पुष्पाणि ग्रहाण मम केशव।।४।।

(कुमाराः)

श्रीसनकादिकों द्वारा प्रार्थना -

ब्रह्मा इन्द्र रुद्र अग्नि कुवेर सूर्य चन्द्र आदि से परिवन्दित हे देवेश ! हे जगन्निवास ! मन्त्र प्रार्थनाओं से आप जागिये।।१।।

हे देव ! यह द्वादशी (प्रबोधिनी एकादशी) सम्पूर्ण लोकों के हितार्थ जाग्रत होने के लिये ही आपने बतलाई है।।२।।

हे जगन्नाथ ! आपके शयन करने पर समस्त जगत् सो जाता है और आपके जाग्रत होने पर सम्पूर्ण जगत् जाग जाता है। अतः आप उठिये।।३।।

मेघ चले गये, आकाश निर्मल है, दिशाये स्वच्छ हो गयी हैं। हे केशव ! शरत्कालीन पुष्पों को स्वीकार कीजिये।।४।।

उत्थितं तु भगवन्तं क्षीराद्यैरभिषेचयेत्।
अभिषिच्य महाविष्णुं वस्त्रालंकारचन्दनैः।।
पुष्पादिभिर्विचित्रान्नैस्ताम्बूलैः पूजयेद्धरिम्।
एकादश्यां हि कृष्णस्य रथोत्सवो हि वैष्णवैः।।

(कुमाराः)

इस प्रकार प्रार्थनापूर्वक जगा करके भगवान् का दुग्ध से अभिषेक कराये। वस्त्र–अलंकार, चन्दन–पुष्प और सुस्वादु सुन्दर भोज्य पदार्थ, ताम्बूल आदि से सेवा–पूजा करे। फिर वैष्णवों के साथ रथोत्सव अर्थात् भगवान की सवारी निकाले।

"जो सज्जन भगवान् के रथ–पालकी को सजाते हैं, रथारूढ़ श्रीसर्वेश्वर प्रभु का भजन–कीर्तन, नृत्य, जयध्वनि करते हैं, शोभायात्रा में पीछे–पीछे चलते हैं, उनके समस्त मनोरथों को श्रीहरि पूर्ण करते हैं।" (भविष्यपुराण)

"रथ–पालकी में विराजित भगवान् की जो भक्त यथाशक्ति पूजा करता है तथा जो धूप, दीप, वस्त्र, नैवेद्य, आरती आदि से भक्तिपूर्वक पूजन–अर्चन करते हैं उनको क्या, कितना, कैसा फल मिलता है उसे श्रीसर्वेश्वर प्रभु ही जानें, हम नहीं बतला सकते। जिनके निवास स्थान के आगे से भगवान् का रथ निकले उनको चाहिये कि धनादि का अभिमान त्यागकर दैन्यभाव से पूजा–आरती करे। जिनके गृह–स्थान के आगे से बिना पूजे हुए भगवान का रथ निकल जाय तो उन पर पितर कुपित रहते हैं। वे दोष के भागी हैं।" (महाभारत)

नृत्य–गान–संकीर्तन तथा रथ के आगे झाँकियों के साथ नगर भ्रमण कर रथ–पालकी को पुनः मन्दिर या गृह में लायें। सेवा करके रात्रि जागरण करे। कार्तिक शु. द्वादशी को भगवान् की मंगला, स्नान, श्रृंगार आदि सेवा करे। कम से कम तेरह ब्राह्मणों का भोजन कराये।

युगल वस्त्र, आसन, उपरना, यज्ञोपवीत देकर पूजा करके प्रणाम करे। भगवद्भक्त–वैष्णवों को भोजन करायें, दक्षिणा दें। फिर ज्ञान प्रदाता गुरुदेव की पूजा करे। साधुओं की पूजा करे। इस प्रकार मास उपवास करने वाला साधक सैकड़ों पीढ़ियों को तारकर भगवद्धाम को प्राप्त कर लेता है और अपने कुल को भी भगवद्धाम पहुँचा देता है।

श्रीदेवर्षि नारदजी कहते हैं–जो कार्तिक का व्रत नहीं करते, उनका वेद–पुराण आदि पढ़ना पढ़ाना भी व्यर्थ है। अधिक क्या जिसने कार्तिक का व्रत नहीं किया, उसका जन्मभर किया हुआ सभी पुण्य भस्म हो जाता है। दुष्प्राप्य मानव–देह को प्राप्त करके जो कार्तिक मास में बतलाये हुए कृत्यों को न करे एवं इस माह को बिना व्रत किये व्यतीत कर देता है, वह नरक का भागी बनता है।

सम्पूर्ण तीर्थों की यात्रा, स्वर्णदान, गोदान आदि सुकृत भी कार्तिक व्रत की समता नहीं कर सकते। कार्तिक में भगवान् के निमित्त जो भी कुछ सुकृत–पुण्य किया जाता है, वह सब अक्षय होता है। जिस प्रकार नदी, पर्वत, समुद्र इन सबका नाश नहीं होता, उसी प्रकार कार्तिक में किये हुए पुण्य और पाप का भी नाश नहीं होता। इसलिये मन, वचन, कर्म से पाप न करे। केवल सत्कर्म करते हुए श्रीहरि की भक्तिपूर्ण सेवा–चिन्तन कर अपने को कृतार्थ करें।



फाल्गुन पूर्णमासी का वसन्त डोलोत्सव

''फाल्गुन–पंचदश्यां तु वसन्तदोलमुत्सवम्।
शुक्लायां कारयेत्कार्ष्णिस्तथा च सनकादयः।।''
''फाल्गुनस्य च राकायां मंडयेद्दोलमण्डपम्।
पश्चात्सिंहासनं पुष्पैर्नूतनैर्वस्त्र–चित्रकैः।।''
''क्रमोत्रायमुपवने कृत्वा मण्डपसंस्क्रियाम्।
चूतपल्लव–बल्लरी कदलीस्तम्भमुख्यकैः।।
तन्मध्ये वेदिकां न्यस्य तत्र कोणप्रभृतिषु।
दिव्यस्तम्भप्रभृतिकान् दोलावयवकान् क्रमात्।।''
छत्रचामरसवृन्त–ध्वज–पताकिकादिभिः।
कारयित्वा ह्युपस्करैश्चिहितं सर्वतोदिशम्।।
राधाकृष्णौ समानयेत् तत्र सुवैष्णवैः सह।
गीतनृत्यादिभिर्यानैर्वेदवादित्र–निःस्वनैः।।

''फाल्गुन की पूर्णमासी को श्रीराधाकृष्ण–भक्त वसन्त–डोल का उत्सव करें। ऐसा श्रीसनकादिकों का आदेश है।''

''फाल्गुन की पूर्णिमा को डोल के मण्डप को सजावे, उसमें नवीन वस्त्रों से सिंहासन को सुसज्जित करे।''

''मण्डप–संस्कार का क्रम इस प्रकार है–उपवन (बगीचे) में आम के पत्तों की झालर, केला के स्तम्भों से मण्डप को सजा करके उसके मध्य में वेदि का और कोणों में दिव्य स्तम्भों को रोपण करके डोल बनावे।''

''छत्र–चँवर और ध्वज–पताका आदि चारों ओर लगावे। श्रीराधाकृष्ण को उसमें विराजमान करें, गाना–बजाना और नृत्य करे।''

''रीत्या स्नेहेन तोषयेन्महाभोग–प्रभृतिभिः।
केसरादि–बहुरागैः सुरभीकृत–वारिभिः।।

विविधचूर्णितरंगै राधाकृष्णौ निषेचयेत्।
दोलोरूढौ श्रियं कृष्णं नानारागविचित्रितौ।।
आन्दोलयेद्रशनया मन्दं मन्दं सुगीतिभिः।
मुख्योज्ज्वलरसाभिज्ञो यथाभावं व्यवहरेत्।।"
"नानारसमयी-लीला वसन्तकालनिर्मिताः।
नानाभाषा-प्रबन्धैश्च वसन्तरागसूचिताः।।
समानोपासकैः सद्भिः गापयेद्रसवेदिभिः।
गायकान् शेषरागाद्यैश्चर्च्चयेच्च प्रतोषयेत्।।"
"विविधराग विकीर्णान् महाप्रसादपूरितान्।
यथोचितकृतनतीन् सत्कृत्य तान् विसर्ज्जयेत्।।"

"महाभोग (नैवेद्य) अर्पण करे, केशर आदि से मिश्रित रंग-विरंगे जल श्रीराधाकृष्ण पर छिड़के। डोल पर विराजमान श्रीराधाकृष्ण को गानवादन-पूर्वक धीरे-धीरे झुलावे। श्रेष्ठ उज्ज्वल (मधुर) रस का ज्ञाता अपने भावों के अनुसार आराधना करे।"

"वसन्तकाल की नाना प्रकार की रसमयी लीलाओं में जो विविध प्रकार की भाषाओं के पदों में सूचित हैं, उनका रसवेत्ता समान भाव वाले उपासकों से गायन करावे। तत्पश्चात् गायकों (समाजियों) का सम्मान करके उन्हें सन्तुष्ट करे।

"महाप्रसाद से पूर्ण कर रंग-विरंगे वस्त्र नमन-पूर्वक उन्हें देवें। सत्कार करके नमस्कार-पूर्वक उनकी विदाई करे।"

समाज गायन-परम्परा-

श्रीऔदुम्बरऋषि द्वारा वर्णित उपरांकित श्लोकों से स्पष्ट है कि श्रीनिम्बार्काचार्यजी के समय से ही समाज-गायन की परम्परा प्रचलित है-

जैसा कि- **'मुख्योज्ज्वलरसभिज्ञो'** श्रीराधाकृष्ण के रसोपासक-श्रेष्ठ मधुररस के ज्ञाता अर्थात् नित्यविहार रस का पान करने वाले, **'समानोपासकैः'** समानभाव वाले श्रीप्रियालाल के अनन्य अराधक,

'नानारसमयीलीला' के पदों का **'गायकान्'** समाजियों से गायन करायें, यह आपने उक्त श्लोकों में वर्णन किया है।

"तैर्हि सह यथागति श्रीकृष्णं स्वाश्रयं नयेत्।
एवं कृते महोत्सवे भजनानन्दमाप्नुयात्।।
श्रीकृष्णः श्रीमुखेनाह भविष्योत्तरके तथा।।"
"एवमाराध्य राकायां दोलारूढ़े हरिश्रियौ।
फाल्गुने कृतकृत्यः स्याद् विश्वस्योद्धारणेक्षमः।।"

"(विदाई के पूर्व) उन सब समाजियों के साथ फिर श्रीराधाकृष्ण को अन्दर (मन्दिर) में पधरावे। इस प्रकार महोत्सव करने पर भजनानन्द की प्राप्ति होती है। ऐसा स्वयं श्रीकृष्ण ने 'भविष्योत्तर पुराण' में कहा है।"

"इस तरह फाल्गुन शुक्ला पूर्णिमा को डोल पर विराजमान श्रीराधाकृष्ण की आराधना करके स्वयं सफलमनोरथ और विश्व के उद्धार करने में समर्थ हो सकता है।"



वर्जनीय वस्तु एवं दुर्व्यसन त्याग

वर्जनीय वस्तुएँ—

निष्पावान् राजमाषांश्च सुप्ते देवे जनार्दने।
यो भक्षयति विप्रेन्द्र चाण्डालादधिको हि सः।।

—श्रीसनत्कुमार (औ.सं. ६५८)

श्रीसनकादिकों ने कहा है—हरिभक्ति चाहने वाला चातुर्मास्य व्रती तथा अन्यजन देवशयन के पश्चात् इन निष्पाव (सेम की फली की साग), राजमास (उड़द) का भक्षण करता है, उसे चाण्डाल से भी बुरा समझना चाहिए।

कलिंगानि पटोलानि वृन्ताकं सन्धितानि च।
एतानि भक्षयेद् यस्तु सुप्ते देवे जनार्दने।।
शतजन्मार्जितं पुण्यं दहते नात्र संशयः।
विहितं वर्णितं तत्र कर्त्तव्यं सनकादिभिः।।

—श्रीसनत्कुमार (औ.सं. ६६०—६६१)

कलिंग (तरबूज), पटोल (परवल), वृन्तांक (बैंगन—भँटा) इनको देवशयन के पश्चात् जो कोई भक्षण करता हो उसके सैकड़ों जन्मों के संचित पुण्य भस्म हो जाते हैं। अतः श्रीसनकादिकों ने जिन—जिन कर्तव्यों का वर्णन किया है, वही करना चाहिए।

दुर्व्यसन त्याग—

दुर्गन्धयुक्त लहसुन, प्याज एवं मद्य, मांस आदि निषिद्ध, मादक, उत्तेजक पदार्थों का सेवन कभी भी नहीं करना चाहिए—

भंग तमाखू अरु अमल (नशा, काम),
सुल्फा (चरस, गाँजा) चर्म (स्पर्शेन्द्रिय) प्रमाद।
इनको पीने अधम नर, जनम गुमावे बाद।।
लहसन गाजर प्याज पुनि कहियत दाल मसूर।
यह अभक्ष वस्तु कही इन सो रहिये दूर।।

काम क्रोध अरु मोद मद, लोभ दीजिये त्याग।
शुभ लक्षन धारन करें, भक्ति ज्ञान वैराग।।

भोजन–ग्रहण विधि–

"कांस्यपात्रे नभुंजीत नप्लक्षवटपत्रयोः।"

काँसे के पात्र में तथा पाकर और वटवृक्ष के पत्ते से बनी पत्तल में भोजन न करे।

'विष्णुपुराण' में कहा गया है कि–

"अस्नाताऽतिमलं भुंक्ते, त्वजपी पूयशोणितम्,
असंस्कृतान्नाभुङ्मूत्रं, वालादि प्रथमं शकृदिति।"

जो पुरुष स्नान बिना किये भोजन करता है, वह अति मल को भक्षण करता है, और गुरु–मन्त्र जप के बिना किये भोजन करता है, वह भोजन पीव व रुधिर तुल्य है, जो असंस्कृत–संस्कारहीन–अशुद्ध अन्ना का भोजन करता है, वह मूत्र के तुल्य है तथा बालकों को न देकर प्रथम जो स्वयं भोजन करता है, वह विष्ठा के तुल्य है।

पद

निम्बार्क दीन बन्धो, सुन पुकार मेरी।
पतितन में पतित नाथ, सरण आयो तेरी।।
तात मात भगिनी भ्रात, परिजन समुदाई।
सबहीं संबन्ध त्यागि, आयो शरनाई।।
काम क्रोध लोभ मोह, दावानल भारी।
निशिदिन हौ जरौं नाथ, लीजिये उबारी।।
अम्बरीष भक्त जान, रक्षा कर धाई।
तैसे ही निज दास जानि, राखौ शरनाई।।
भक्त वछल नाथ नाम, वेदन में गायो।
'श्रीभट' तब चरन परसि, अभै दान पायो।।

– श्रीश्रीभट्टदेवाचार्यजी

अनन्तश्री विभूषित जगद्गुरु
श्रीनिम्बार्काचार्य जी महाराज द्वारा विरचित

श्रीवेदान्त-दशश्लोकी

ज्ञानस्वरूपञ्च हरेरधीनं, शरीरसंयोगवियोगयोग्यम्।
अणुं हि जीवं प्रतिदेहभिन्नं, ज्ञातृत्ववन्तं यदनन्तमाहुः।।१।।

जीव अनन्त (असंख्य) हैं। वे ज्ञान (प्रकाश) स्वरूप और ज्ञानवान् भी हैं। शरीरों के साथ संयोग-वियोग होना ही जन्म-मरण है। वे अणु (अत्यन्त सूक्ष्म) हैं और प्रत्येक देह में भिन्न-भिन्न हैं। सदा-सर्वदा हरि के आधीन रहते हैं।।१।।

अनादिमायापरियुक्तरूपं, त्वेनं विदुर्वै भगवत्प्रसादात्।
मुक्तञ्च बद्धं किलबद्धमुक्तं, प्रभेदबाहुल्यमथापि बोध्यम्।।२।।

यह पता नहीं चलता कि जीवों के पीछे माया कब से लगी हुई है, इस अनादि माया से युक्त होने के कारण ही जीव अपने और परमात्मा के स्वरूप को नहीं पहचान सकते। जब प्रभु ही कृपा करें तब इस माया से छुटकारा हो और स्वरूप का इन्हें ज्ञान हो। मुक्त (मायाजनित पदार्थों के साथ सम्बन्ध होने से उत्पन्न नानाविध क्लेशों से रहित), बद्ध (मायाजन्य पदार्थों में दृढ़रूप से ममता करने वाले) इन भेदों से जीव दो प्रकार के हैं तथापि बद्ध और मुक्त जीवों के अनेक भेद जानने योग्य हैं।।२।।

अप्राकृतं प्राकृतरूपकञ्च, कालस्वरूपं तदचेतनं मतम्।
मायाप्रधानादिपदप्रवाच्यं, शुक्लादिभेदाश्च समेऽपि तत्र।।३।।

अप्राकृत (भगवान् के चित्स्वरूप धाम आदि) प्राकृत=प्रकृति और उसका कार्य एवं काल, ये सब अचेतन माने जाते हैं। माया, प्रधान, अव्यक्त आदि प्रकृति के नाम हैं। शुक्ल, रक्त, पीतवर्ण और सत्व, रज और तम-तीनों गुण भी उसी प्रकृति के हैं।।३।।

स्वभावतोऽपास्त-समस्तदोष-मशेषकल्याणगुणैक-राशिम्।
व्यूहांगिनं ब्रह्म परं वरेण्यं, ध्यायेम कृष्णं कमलेक्षणं हरिम्।।४।।

जो समस्त सद्गुणों के समुद्र हैं किन्तु किसी भी प्राकृतिक दोष से लिप्त नहीं हैं, वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध इन चारों व्यूहों के अंगी हैं। कमल के समान नेत्र वाले भक्तों के पाप दोषों को हरने वाले हैं। सेवा करने योग्य परब्रह्म श्रीकृष्ण का हम ध्यान करते हैं।।४।।

अंगे तु वामे वृषभानुजां मुदा, विराजमानामनुरूपसौभगाम्।
सखीसहस्रैः परिसेवितां सदा, स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम्।।५।।

उन (प्रभु) के समान ही सौन्दर्य, माधुर्य युक्त (उनके) बायें अंग में विराजमान, हजारों सखियों से सेवित समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली उन श्रीकिशोरी (राधा) जी का हम स्मरण करते हैं।।५।।

उपासनीयं नितरां जनैः सदा, प्रहाणयेऽज्ञानतमोऽनुवृत्तेः।
सनन्दनाद्यैर्मुनिभिस्तथोक्तं, श्रीनारदायाखिलतत्त्वसाक्षिणे।।६।।

इन श्रीराधाकृष्ण युगल किशोरात्मक परब्रह्म की निरन्तर उपासना करते रहना चाहिए। उनके ध्यानमात्र से अज्ञान (तम अविद्या की) अनुवृत्ति क्षीण हो जाती है। हमारे (श्रीनिम्बार्काचार्य के) परमगुरु श्रीसनकादिकों ने अखिल तत्त्वज्ञ गुरुदेव श्रीनारदजी को यह सदुपदेश दिया था।।६।।

सर्वं हि विज्ञानमतो यथार्थकं, श्रुतिस्मृतिभ्यो निखिलस्य वस्तुनः।
ब्रह्मात्मकत्वादिति वेदविन्मतं, त्रिरूपताऽपि श्रुतिसूत्रसाधिता।।७।।

जड़-चेतन रूपी दृश्यमान् यह समस्त विश्व विज्ञान (ब्रह्म) रूप ही है, ऐसा शास्त्रों में कहा गया है। ब्रह्मात्मक होने से ही यह संसार यथार्थ (सत्) भी है। श्रुति और सूत्रग्रन्थों में भोक्ता, भोग्य और प्रेरक रूप इस विश्व की त्रिरूपता भी यथार्थ ही समझना चाहिए।।७।।

नान्यागतिः कृष्णपदारविन्दात्, संदृश्यते ब्रह्मशिवादिवन्दितात्।
भक्तेच्छयोपात्तसुचिन्त्यविग्रहा-दचिंत्यशक्तेरविचिंत्यसाशयात्।।८।।

जिसकी शक्ति और आशय का किसी को पता ही नहीं लग सकता, फिर भी वे भक्तों की इच्छा के अनुसार अनेक अवतार धारण करते हैं। जिनकी ब्रह्मा, शंकर आदि समस्त देवता वन्दना करते हैं, उन श्रीराधाकृष्ण के चरणकमलों के अतिरिक्त मैं कोई सहारा नहीं देखता।।८।।

कृपास्य दैन्यादियुजि प्रजायते, यया भवेत्प्रेमविशेषलक्षणा।
भक्तिर्ह्यनन्याधिपतेर्महात्मनः सा चोत्तमा साधनरूपिकाऽपरा।।९।।

जिसमें दीनता (विनम्रता) आदि गुण हो उसी पर वे प्रभु कृपा करते हैं। उनकी कृपा से ही अनन्याधिपति श्रीसर्वेश्वर प्रभु की प्रेम विशेष लक्षणा भक्ति मिल सकती है, उसी को उत्तमा भक्ति कहते हैं। श्रवण-कीर्तनादि साधन रूपा भक्ति, अपरा-भक्ति कहलाती है।।९।।

उपास्यरूपं तदुपासकस्य च, कृपाफलं भक्तिरसस्ततः परम्।
विरोधिना रूपमथैतदाप्तेर्ज्ञेया इमेऽर्था अपि पञ्च साधुभिः।।१०।।

साधुओं (उपासकों) को चाहिए कि अपने **उपास्य** (सर्वेश्वर श्रीराधाकृष्ण), **उपासक** (साधक जीव) और **कृपाफल** (श्रीराधाकृष्ण की कृपा का श्रीभगवत्प्राप्ति फल), **भक्तिरस** (अनन्य पराभक्ति) तथा भगवत्-प्राप्ति एवं भक्ति के **विरोधी** इन पांचों के स्वरूप को अच्छी प्रकार से जान लें।।१०।।